समरथ

संयुक्तांक : सितंबर से दिसंबर 2007 ◆ नई दिल्ली

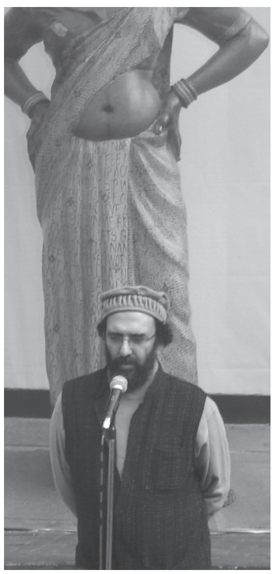

'अम्न पुर अम्न ज़िंदगी के लिए'

6 दिसंबर 1992—6 दिसंबर 2007

बाबरी मस्जिद विध्वंस के पंद्रह वर्ष

लोकतंत्र की हिफ़ाज़त के लिए साझा संघर्ष

अम्बरी मोती

इस धरती के हर कोने पर हमने तमाम तरह की सभ्यताओं के इतिहास लिखे हैं। यानि कहां इंसान कब और किस तरह से सभ्य हुआ और वो सभ्यता फूली-फली और परवान चढ़ी। इसे एक और दृष्टिकोण से भी देखा जा सकता है। जहां एक ओर इंसान ने अपनी रचनात्मकता और बाजुओं की ताकत से धरती पर बहुत कुछ सजाया, संवारा वहीं दूसरी तरफ सब कुछ उजाड़ने का भी इंतजाम करता गया। एक तरह से यह सभ्यता के साथ-साथ चलने वाला असभ्यता का भी इतिहास है। धर्म गढ़े तो उसे सत्ता का साधन भी बनाया। विकास किए तो उसमें ऐसी सौदागरी रचा-बसा दी कि विकास आम इंसान के लिए न हो सके और ये सिलसिला अभी भी जारी है। इंसान को राह पर ले आने के लिए जब भी इस जमीन पर पथप्रदर्शक आए तो उनके खिलाफ तरह-तरह के फरेब किए गए। किसी सुकरात को जहर का प्याला मिला तो किसी बुद्ध को भिक्षा में जहर। कोई मंसूर सूली चढ़ा तो कोई गांधी गोली का निशाना बना क्योंकि कभी धर्म की इजारादारी को खतरा लगा तो कभी युद्ध के उन्माद और हथियारों की तिजारत के लिए चुनौती खड़ी हुई। लोगों को राह पर ले आने और शांतिदूत भेजने वाले देवता भी शायद हार मान गए। अमृता प्रीतम की प्रस्तुत कविता अम्बरी मोती में कुछ इन्हीं विचारों को बड़ी खूबसूरती से संजोया गया है और आज वर्तमान संदर्भ में ये पूरी तरह खरी उतरती है।

कहो तो लोगो, एक बात कहूँ
पर कहते हैं कि दिन के वक़्त बात कहें
तो राहियों को राह भूल जाती है
पर सच्ची बात तो ये
कि राहियों को कब से राह भूल चुके हैं
और क्या भूलेंगे
और जाने ये बात सुनते हुए
किसी को कोई अपनी राह याद आये

मैं एक आठवें मोती की बात कहती हूँ
ये बात चाहें तो आप
वेदों-पुराणों से पूछ सकते हैं
मोती जो सागर के किसी सीपी से मिलता है
कई बार जंगल के किसी बाँस से भी
कई बार किसी मछली के पेट से भी
और किसी-किसी हाथी के मस्तक से भी
कोई गजमुक्ता मिल ही जाता है
ये सात किस्म के मोती
दुनिया ने देखे हैं, खरीदे हैं
मोतियों का बहुत मोल पड़ता है
कई नाज़नीनें इनका शृंगार करती हैं
और कई राजा ताज में लगाते हैं

लेकिन बात तो उस आठवें की है
जो मोती किसी ने देखा न सुना
सिर्फ़ ऋषियों की जुबानी जाना है
कि वो मोती अम्बर की हवाओं में रहता है
हवाओं की सातवीं सतह के अन्दर
और कभी-कभी जब बादल गरजते हैं
और बिजली चमकती-कड़कती
तो हवाओं की सतह से
अम्बर के बाल खुल-खुल जाते हैं
और मोती धरती पर गिरने लगता है
लेकिन देवता गिरने नहीं देते
हाथों में थाम लेते हैं
और इस तरह वह मोती
किसी ने देखा नहीं

कहते हैं कि एक बार हवा जोर से बहने लगी
अम्बर का दिल भी धड़क गया
और जब शुब्ह हुआ
कि मोती हवाओं से निकल कर
धरती पर जाने लगा है
तो देवता दौड़े
हाथों में थाम लेने के लिए
और कहते हैं
कि उस वक़्त उर्वशी ने कहा--
इन्द्र राजा !
तेरे सिंहासन को कोई ख़तरा नहीं
इस मोती को धरती पर जाने दो
और धरती के लोगों को
इसका दीदार पाने दो
कहते हैं कि इन्द्र मुस्करा दिया
कहने लगा--
क्यों इस मोती को बेआबरू करती है
इस धरती पर कोई इसे झेल नहीं पाएगा
और ये दीवारों से टकराता
फिर लौट आएगा

उर्वशी ने हठ बाँध लिया
तो इन्द्र ने कहा--मैंने कई बार पहले भी
मोती को जाने दिया था
लेकिन मरी धरती
इस मोती को नहीं झेलती

उर्वशी ने मिन्नत सी की--
राजा, धरती के लोग बहुत भटके हुए
उन पर तरस करो
कि सच की कणीं उन्हें नसीब हो !
शायद कोई मोती का दीदार पाएगा
तो उसकी होशमन्दी लौट आएगी
और उसकी चेतना
जो युगों से सो रही है
वो जाग जाएगी

कहते हैं इन्द्र मुस्कराया और कहने लगा--
अच्छा तू जो कहती है
मैं मान लेता हूँ
जाने ये कोई रहस्य हो
या शायद वक़्त आ गया
कि ये कायनात की रज़ा हो

इन्द्र ने सभी देवता लौटा लिये
कहा--जाने दीजिए इस मोती को
देखें कि धरती को पहचान पड़ती है या नहीं...
और लोगो, ये कहानी है--
जो कई बार धरती पर गुज़री है
और अभी-अभी फिर गुज़र गयी
इस मोती की रहमत ये होती
पहले ये किसी नसीब वाली की कोख में पड़ता
फिर धरती का बाल हो कर
धरती पर खेलता
जवान होता, दुनिया देखती
तो अन्दर कहीं कुछ हिल, पिघल जाता
तमाशायियों की बात और है
जिन्हें किसी की पहचान नहीं पड़ती
लेकिन जो धर्म का व्यापार करते हैं
उसे देखते ही उनका माथा ठनक जाता
डरते कि अगर किसी ने
उसके अक्षर पी लिये
तो उनका कहा सुना वो भूल जाएगा
और वो सच को पहचान जाएगा
फिर उनके हाथ में पकड़ी
जो सारी नकेलें थीं
जिनमें ये सभी लोग बँधे हैं
फिर उनका क्या होगा?
और एक कयामत आएगी
और नेम-धरम का सारा व्यापार
सब व्यर्थ जाएगा
हथियारों का व्यापार भी
और आसनों-सिंहासनों का सौदा भी
और वे घबराये हुए
एक दूसरे को देखने लगे

वो मोती जो धरती पर आया था
एक काया पहन कर
जहाँ भी क़दम रखता
दुनिया वालों के दिलों में
दहशत-सी आने लगती
कि ये तो किसी दिन
सोये हुए लोगों को जगाएगा...
और वो धरती के जिस टुकड़े पर गया
हर मजहब और सियासत ने
उसके क़दमों को लौटा दिये

वो हँसा
और भीड़ से कुछ कहता और सुनता
जो लोगों के कानों में पड़ा भी और नहीं भी
कि सारी धरती भी शापित है
कई पगले उसे शाही वेश पहनाते रहे
और हीरों की गानी
उसके हाथ को बाँधते रहे
वो हँसता रहा
सभी वेश पहनता-उतारता रहा
ख़ैर ये तो पागल लोगों की बात है
लेकिन जो बहुत चतुर लोग थे
उन्होंने ज़हर मँगवाया
उसके बिस्तर पर बिछाया
और उसकी साँसों में उतार दिया

काया का अपना धर्म होता है
वो खिलती भी है मुरझाती भी है
उसकी काया जब नीली पड़ गयी
तो आसमान की हवाएँ आयीं
और अपना वो मोती सँभाल कर
आसमान को लौट गयीं
उर्वशी की आँखों में पानी आ गया
इन्द्र ने कहा--मैंने तुम्हें कहा था
मैं पहले भी ये मोती
कई बार भेज चुका हूँ...
उर्वशी ने आँखें झुका लीं
और अपनी यादों में उतर गयी
कि उसने कुछ किरनों को ले कर
कई बार बुद्ध का चित्र बनाया
कई बार धरती से कान लगा कर
वो बाँसुरी की आवाज़ सुनती थी
और कई बार जब कोई राधा मटकिया ले कर
गौओं को दूहने के लिए जाती थी
तो कई बार यहाँ कामधेनु का भी दूध उतर आता

कभी धरती पर कोई योगी
इकतारा बजाता
तो रम्भा और मेनका
धरती पर जाने को होतीं
मैंने जब किसी की रबाब सुनी थी
वो सारी कायनात की ध्वनि बन गयी

उस वक़्त इन्द्र ने कहा--
ये युग-युग में होता रहा
ऋषि मुनि भी हुए
आशिक-दरवेश भी
जो धरती पर गये थे
किसी को उनकी पहचान नहीं हुई
अब इसीलिए एक फ़कीर को भेजा
कायनात का इल्म दे कर
कि भूले हुए लोगों को
शायद कुछ स्मरण में आये...
पर लोग उससे भी यूँ ही खेलने लगे
कभी उसे शाही-लिबास पहनाते
कभी हीरे भी उसे बाँध देते
वो हर हाल में हँसता रहा
और कायनाती रमज़ की बात कहता रहा
लेकिन लोगों की याद शापित हो चुकी है
वे कुछ नहीं सुनते
सभी धन-दौलत को छीनना जानते हैं
मारक हथियारों को बनाते
बेचते और बाँटते
नहीं जानते कि इस तरह
एक कयामत आएगी
और उन्हीं की धरती
उन्हीं के खून में भीग जाएगी...

इन्द्र ने गहरा साँस लिया--
तब शायद वो वक़्त आएगा
जब बचे हुए लोगों को
कुछ याद आएगा
तब शायद थकी हुई धरती
बदन से खून को निचोड़ कर
कोई दिशा पाने को तरस जाएगी
और मिन्नत-सी करेगी
वो मेघ मोती माँगने के लिए
कि वह मोती फिर से धरती पर आये
और लोगों को दिशा दे !

सिर्फ़ तब... सिर्फ़ तब...
अभी नहीं
उर्वशी ने इन्द्र का हाथ पकड़ा
और भरी आँखों से आसमान को देखने लगी...

अमृता प्रीतम

बच्चों के खिलाफ यौन हिंसा

■ अंजलि सिन्हा

19 नवंबर को 'बच्चों के खिलाफ हिंसा से बचाव' का विश्व दिवस मनाया गया। बच्चों के मुद्दों पर काम करने वाली कुछ संस्थाओं ने इस दिन को अपने-अपने ढंग से मनाया। हालांकि भारत में अभी यह दिन अधिक प्रचलित नहीं हुआ है लेकिन यहां बच्चों के खिलाफ होने वाली हिंसा का बढ़ता ग्राफ तथा इस समस्या के प्रति पूरे समाज की कम जागरूकता चिंता का विषय बना है। जिस किस्म के रिपोर्ट, तथ्य, आंकड़े सामने आ रहे हैं उसमें बच्चों के खिलाफ घर के बाहर तथा अन्दर जारी विभिन्न प्रकार के अपराधों पर लोगों की निगाह गयी है।

संगठित गिरोहों द्वारा बच्चों को बेचना, अनाथालय के नाम पर विदेशी टूरिस्टों के लिये यौन पर्यटन के लिए बच्चे उपलब्ध करना, बालपोर्नोग्राफी आदि को लेकर बातें पहले से भी होती आयी हैं, लेकिन इधर बीच आत्मीय सम्बन्धों में यौन अत्याचार का शिकार बच्चों पर ध्यान बढ़ा है। यह प्रतीत होने लगा है कि बच्चे गली- मुहल्ले, शिक्षण संस्थान तथा अपने घर में असुरक्षित हो गये है। इसका अर्थ यह नहीं है कि वह पहले सुरक्षित थे लेकिन संभवतः हम सभी भी इस समस्या के प्रति अगंभीर या गैरजानकार थे।

19 नवंबर को बाल विरोधी हिंसा के खिलाफ विश्व दिवस के पहले 14 नवंबर पड़ता है जिसे भारत में बाल दिवस के रूप में मनाया जाता है। देश और समाज के भविष्य के इन कर्णधारों पर आधारित कई कार्यक्रम होते हैं।

इसी साल भारत सरकार के समाज एवं बालकल्याण मंत्रालय ने खुलासा किया कि 53 प्रतिशत बच्चे यौन हिंसा के शिकार होते हैं। यह भी उजागर हुआ कि बच्चे बड़ों के द्वारा, अपने गुरुजनों के द्वारा, रिश्तेदारों के द्वारा तो पीड़ित हैं ही, वे पर्यटकों द्वारा तथा धार्मिक आस्था के नाम पर यौन अत्याचार झेलते हैं। इसमें कभी-कभी उनसे थोड़े बड़े बच्चे भी अत्याचारी बनते हैं। अर्थात बचपन में ही खेल-खेल में ही वे दूसरे को गंभीर आघात पहुंचाते हैं, जिसका साया जिन्दगी भर पीड़ित बच्चे के साथ रहता है। 19 नवंबर की ही खबर है (सहारा 19 नवंबर) कि 12 वर्षीय बालिका के साथ 13 और 14 वर्षीय बालकों ने बलात्कार किया तथा उसे डराया, धमकाया। लड़की मेडिकल परीक्षण तथा कानूनी प्रक्रिया से गुजर रही है।

बच्चों के आक्रामक व्यवहार की खोजबीन होनी ही चाहिये और उसे कैसे शुरू से जेंडर संवेदनशील बनाया जाय इस पर भी काम किया जाना चाहिये। लेकिन उससे बड़ा, व्यापक और गंभीर मुद्दा है बच्चों के खिलाफ बड़ों द्वारा किया गया अपराध। जैसे-जैसे एड्स के प्रति जागरूकता बढ़ी है और दुनिया के कई विकसित देशों में बच्चों का इस्तेमाल आसान नहीं है वे लोग हमारे जैसे तीसरी दुनिया के देश में पहुंचते हैं जहां कई बार बाजार को देखने या विकास के कुछ पैमाने के आधार पर विकसित कहने का दंभ भरने लगते तो बच्चों या कमजोर वर्गों की स्थिति के मामले में तीसरी दुनिया के पैमाने को भी पीछे छोड़ बर्बर की श्रेणी में आ जाते हैं, आसानी से बच्चों को अपना शिकार बना लेते हैं। तामिलनाडू के महाबलिपुरम् से खबर आयी कि कई गैरसरकारी संस्थाओं द्वारा चलाये जा रहे अनाथालय बच्चों के 'शौकीनों' का शौक पूरा करते हैं। इनमें से एक अनाथालय का स्टिंग ऑपरेशन भी हुआ था, जिसमें तमाम विस्फोटक तथ्य सामने आये। गोवा से भी इसी किस्म की खबरें आती हैं।

बालवेश्यावृत्ति पर काफी कुछ लिखा जा चुका है और कई संस्थाएं इस मुद्दे पर मोटी रकम बहा कर काम कर रही हैं। किंतु इस प्रकार के काम से क्या परिवर्तन होगा इसमें शक है। जब तक सरकार इस पर प्रभावी कदम नहीं उठाती और समस्या के कारणों के तह में नहीं जाती तब तक प्रतीकात्मक असर ही सम्भव है।

दूसरा गंभीर सवाल हमारे परिवेश का है जिसमें बीमार मानसिकता पलती है जो बच्चों को सॉफ्ट टारगेट बनाती है। उत्पीड़न की इतनी घटनायें तथा विभिन्न प्रकार सामने आने पर भी माता-पिता तथा परिवार चेतने को तैयार नहीं हैं। लोगों को यह समस्या अभी भी किसी दूसरी दुनिया की समस्या लगती है। इसलिये वे न तो अपने बच्चों को प्रशिक्षित करने की जरूरत समझ रहे हैं और न ही उत्पीड़क को अपने किये कराये का सबक मिल रहा है।

कुछ माह पहले की ख़बर है उत्तर प्रदेश के गाजीपुर जिले के मोहम्मदाबाद की। अपने परिवार में बेटी अपने ही चाचा के हाथों यौन अत्याचार का शिकार होती थी। बेटी ने जब अपने

माता-पिता से यह बात बांटने की कोशिश की, तब उन्होंने उसे ही चुप करा दिया। बाद में वही लड़की बनारस पढ़ने गयी। वहां उसके फूफा ने उसके साथ यौन अत्याचार किए। लड़की किसी बहाने जब मोहम्मदाबाद लौटी, तब घर जाने के बजाय सीधे पुलिस थाने गयी और वहां की पुलिस के कारण फिर इस लड़की को अपने कहे जाने वाले यौन अत्याचारियों से छूट मिली।

हर बच्चे को आज के समय में स्वस्थ और अस्वस्थ स्पर्श के अर्थ को समझना चाहिये और बड़ों द्वारा समझाना भी चाहिये। उसे ऐसे अवांछित एवम अस्वस्थ्य स्पर्श से बचाव के तरीके भी बताने होंगे तथा साथ में पूरे समाज में इस समस्या के प्रति जागरूकता लानी चाहिए। सर्वेक्षणों में उजागर यह बात हर मां-बाप को या बाल अधिकारों के प्रति संवेदनशील हर व्यक्ति को अपने मन में रेखांकित करनी चाहिए कि 'बच्चे अपने आत्मीय सम्बन्ध में ही अधिक अत्याचार का शिकार होते हैं।' अध्ययन यही बताते हैं कि बच्चों का इस किस्म का रिश्ता होता है कि वह इसके बारे में कुछ बोल ही नहीं पाते हैं।

दूसरी बात बच्चे के साथ होने वाले इन अत्याचारों का असर उसे जिन्दगी भर झेलना पड़ता है। स्त्रियों एवं किशोरियों की कार्यशाला में ऐसी कई पीड़ितों से मुलाकात का मौका मिला है, जहां वे बचपन में उनके साथ हुए ऐसे किसी हादसे से अभी भी उबरी नहीं दिखती।

यह दुखद है कि हमारे समाज में अभी भी भारतीय सभ्यता/परंपरा आदि के नाम पर, संस्कार कह कर बच्चों के साथ इस मसले पर बात करने के पक्षधर नहीं हैं लोग। अब तो खबर आ रही है कि बच्चों का ऑनलाइन उत्पीड़न कैसे होने लगा है। बालपोर्नोग्राफी के धंधे में प्रचण्ड मुनाफा यह भी ख़बर है।

तीसरी दुनिया की तरह हमारे देश में परिवार की पवित्रता की कुछ ज्यादा ही चर्चा होती है, जबकि बाल एवं स्त्री विरोधी हिंसा के नायाब नमुने वहां नज़र आते हैं। इसीलिए 'पवित्र परिवारों' के सभी रिश्तेदारों पर आंख मूंद भरोसा करना भी कोई अक्लमंदी की बात साबित नहीं होगी। यद्यपि शक करना अच्छा गुण नहीं है, इसके बावजूद मासूमों की हिफाजत अपनी जिम्मेदारी भी है इसलिये स्थिति को भांपना भी सीखना चाहिए।

(लेखिका स्त्री अधिकार संगठन से सम्बद्ध हैं एवं दिल्ली विश्वविद्यालय के सत्यवती कॉलेज में कौन्सिलर के पद पर कार्यरत हैं)

बेख़बरी का फायदा

लबलबी दबी   पिस्तौल से झुँझलाकर गोली बाहर निकली।
खिड़की में से बाहर झाँकनेवाला आदमी उसी जगह दोहरा हो गया।
लबलबी थोड़ी देर के बाद फिर दबी   दूसरी गोली भिनभिनाती हुई बाहर निकली।
सड़क पर माशकी की मश्क फटी; वह औंधे मुँह गिरा और उसका लहू मश्क के पानी में हल[1] होकर बहने लगा
लबलबी तीसरी बार दबी   निशाना चूक गया; गोली एक गीली दीवार में जज़्ब हो गई।
चौथी गोली एक बूढ़ी औरत की पीठ में लगी; वह चीख़ भी न सकी और वहीं ढेर हो गई।
पाँचवीं और छठी गोली बेकार गई; कोई हलाक हुआ न ज़ख़्मी।
गोलियाँ चलाने वाला भिन्ना गया।
दफ़अतन सड़क पर एक छोटा-सा बच्चा दौड़ता हुआ दिखाई दिया।
गोलियाँ चलानेवाले ने पिस्तौल का मुँह उसकी तरफ़ मोड़ा।
उसके साथी ने कहा : "यह क्या करते हो?"
गोलियाँ चलानेवाले ने पूछा : "क्यों?"
"गोलियाँ तो ख़त्म हो चुकी हैं !"
"तुम ख़ामोश रहो... इतने-से बच्चे को क्या मालूम?"

1. मिलकर, घलकर।

साभार : सआदत हसन मंटो दस्तावेज़-2

विशेष आर्थिक क्षेत्र : क्या ज़मीन हस्तगतकरण ही केन्द्रीय मुद्दा है?

■ सुभाष गाताड़े

अक्सर किसी दौर में कुछ खास नारे बदलाव के विमर्श को प्रभावित करते दिखते हैं। अगर 90 का दशक बड़ी परियोजनाओं से निर्मित विस्थापन के खिलाफ उठे जनान्दोलनों को लेकर चर्चित था, तो 21 वीं सदी की पहली इकाई का उत्तरार्द्ध विशेष आर्थिक क्षेत्र के निर्माण - विशेषकर कॉर्पोरेट समूहों को लिये औने-पौने दाम उपलब्ध की जाती रही जमीन - के मसले पर उठती जनहलचलों के इर्दगिर्द केन्द्रित होता दिख रहा है।

चाहे महाराष्ट्र का रायगढ़ आन्दोलन हो, जहां मुकेश अम्बानी की मिल्कियत वाली रिलायन्स इण्डस्ट्रीज द्वारा 35,000 हेक्टेअर इलाके में फैले विशेष आर्थिक क्षेत्र का निर्माण हो रहा है या उड़ीसा के गोपालपुर में टाटा समूह के लिए बने विशेष आर्थिक क्षेत्र का मामला हो या इण्डोनेशिया के सलेम समूह के केमिकल हब के निर्माण के लिए विशेष आर्थिक क्षेत्र हेतु पश्चिम बंगाल में उपलब्ध की जा रही जमीन हो, या मंगलौर रिफायनरी की ओर से बन रहे विशेष आर्थिक क्षेत्र हो, देश के अलग-अलग भागों में जनान्दोलनों का एक नया सिलसिला आगे बढ़ रहा है या आन्दोलनों की नयी जमीन तैयार हो रही है।

आज़ादी के साठ साल बाद भी इस देश में भूमि सुधार के मसले को लेकर कभी तत्पर न दिखीं विभिन्न सत्ताधारी पार्टियों द्वारा कार्पोरेट समूहों को जमीनें उपलब्ध कराने को लेकर दिखायी जा रही अतितत्परता निश्चित ही अचम्भित करने वाली है। विशेष आर्थिक क्षेत्र के निर्माण के लिए औने-पौने दाम ली जा रही जमीनों को लेकर फूटते जनाक्रोश की अगुआई में अलग-अलग ताकतें आगे आती दिख रही हैं। और इन आन्दोलनों के निशाने पर सूबाई सरकारें हैं जो इन कॉर्पोरेट समूहों के लिये जमीन उपलब्ध कराने में मध्यस्थ की भूमिका में उतरी हैं। अगर रायगढ़ के आन्दोलन में शिवसेना की अग्रणी भूमिका है, उत्तर प्रदेश के दादरी में बन रहे अनिल अम्बानी के पावर प्लांट के खिलाफ किसानों की अगुआई में वी पी सिंह जुटे रहे हैं तो नन्दीग्राम के विरोध में तृणमूल कांग्रेस से लेकर माओवादियों तक सबका एक व्यापक मोर्चा बना हुआ है। आमूलचूल बदलाव का सपना देखती ताकतों को भी अचानक यह लगने लगा है कि अब उनके हाथ में एक ऐसा मुद्दा मिल गया है, जिसकी गूंज लम्बे समय तक सुनाई देती रहेगी।

अब जहां तक विशेष आर्थिक क्षेत्र का सवाल है तो उसके बारे में कुछ बातें बिल्कुल स्पष्ट हैं : कथित तौर पर विदेशी निवेश को आकर्षित करने के लिए बने वह देश के अन्दर ही स्थित अलग किस्म के भौगोलिक इलाके होते हैं जो ऐसे आर्थिक नियमों से संचालित होते हैं जो उपरोक्त देश विशेष के आर्थिक कानूनों से अधिक लचीले होते हैं। अर्थात अगर मुल्क विशेष में मजदूरों के अधिकारों की सुरक्षा करने वाले, कर, व्यापार, उत्पादन-शुल्क आदि को लेकर बने निश्चित कानून होते हैं तो उसी मुल्क की धरती पर बने इन विशेष आर्थिक क्षेत्रों को इन तमाम 'बन्धनों' से मुक्ति मिलती है। सिद्धान्ततः ऐसे क्षेत्रों का निर्माण अपने मुल्क के हिसाब से सोचें तो देश के पूंजीपतियों को 'बाहरी' पूंजीपतियों के बरअक्स अधिक वरीयता देने से जुड़ा मामला है। आम तौर पर यहां निर्मित तमाम उत्पादन निर्यात क्षेत्र के लिए ही उपलब्ध होता है, जिन्हें लगभग दस साल तक तमाम करों से मुक्त रखा जाता है। समूची दुनिया के हिसाब से देखें, तो सबसे चर्चित एवं सबसे पहला विशेष आर्थिक क्षेत्र चीन के शेनझेन नामक छोटे से गांव में शुरू हुआ, जो गांव बीते बीस वर्षो में 1 करोड़ की आबादी तक पहुंचा है।

विश्व बैंक के आकलन के हिसाब से वर्ष 2007 तक 120 विभिन्न देशों में 3,000 ऐसी परियोजनायें थीं जहां विशेष आर्थिक क्षेत्र का निर्माण हो रहा है। अप्रैल 2000 में ही भारत सरकार ने विशेष आर्थिक क्षेत्र के बारे में अपनी नीति तय की जहां व्यापार, कर एवं सीमाशुल्क के हिसाब से देखें तो ऐसे क्षेत्र 'विदेशी क्षेत्र' के समकक्ष ही थे। वर्ष 2007 के आते-आते 500 से अधिक विशेष आर्थिक क्षेत्रों के प्रस्ताव रखे गये थे जिनमें से 220 बने भी थे। जानने योग्य है कि विशेष आर्थिक क्षेत्रों की इतनी अधिक संख्या को देखते हुए - जिनके चलते सरकार की अपनी आमदनी पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा - विश्व बैंक ने भी चिन्ता प्रकट की है।

अब जहां तक विशेष आर्थिक क्षेत्र के खिलाफ उठती जनहलचलों का सवाल है, यह बात सबके सामने है कि इनका केन्द्रीय मुद्दा जमीनों का 'औने पौने दाम में छीना जाना' बना हुआ है। विभिन्न सरकारों द्वारा कॉर्पोरेट समूहों को जमीन मुहैया कराने को लेकर निभायी जा रही भूमिका भी विवादों के घेरे में है, जिसके चलते उन्हें ही लोगों के कोपभाजन का शिकार होना पड़ रहा है। यह बात रेखांकित करने वाली है कि जमीन के हस्तगतकरण के तरीके को लेकर उठे आक्रोश को ठण्डा करने के लिए सरकारों की तरफ से यहां तक कि न्यायपालिका की ओर से भी हस्तक्षेप

किया गया है। गौरतलब है कि 'इन्फोसिस' के संस्थापक प्रख्यात उद्यमी नारायणमूर्ति ने भी कुछ माह पहले अपने व्याख्यान में इस बात पर जोर दिया था कि कॉर्पोरेट समूहों को जमीनें उपलब्ध कराने में मध्यस्थता निभाने के काम को सरकारों को छोड़ना चाहिए और उसे कॉर्पोरेट समूहों तथा किसानों/भू-मालिकों के बीच के मामले के तौर पर पेश करना चाहिए।

यह अकारण नहीं कि विशेष आर्थिक क्षेत्र के लिए जनाब मुरली मनोहर जोशी की अध्यक्षता में बनी संसदीय समिति ने (एएनआई, 6 जुलाई 2007) बताया कि किसी भी नये विशेष आर्थिक क्षेत्र के निर्माण को लेकर नयी अधिसूचना नहीं जारी की जाएगी जब तक जमीन हस्तगतकरण के सम्बन्ध में वर्तमान कानूनों को संशोधित नहीं किया जाता। अपनी 83 वीं रिपोर्ट में जहां उसने 'सेज' की सीमा 2,000 एकड़ जमीन तक तय की वहीं उसने यह भी जोड़ा की जमीन की मिल्कियत को बदलने के बजाय 'सेज' के लिए सभी जमीन को डेवलपर्स को लीज पर दिया जाना चाहिए।

इसके अलावा कॉर्पोरेट समूहों की तरफ से सरकार को साथ लेकर जमीनों को लेकर बेहद आकर्षक पैकेज भी पेश किए जा रहे हैं। पिछले दिनों यह ख़बर आयी थी कि हरियाणा में झज्जर के पास बन रहे मुकेश अम्बानी के विशेष आर्थिक क्षेत्र के लिए किसानों को अपनी एक एकड़ जमीन के लिए 27 लाख रुपए का पैकेज भी दिया जा रहा है। 18 नवम्बर 2007 को अपने गृह जिला रोहतक की सभा में हरियाणा के मुख्यमंत्री ने यह भी ऐलान किया कि 'सेज' के लिए जमीन देने वाले किसानों को आने वाले तैंतीस साल तक रायल्टी भी मिला करेगी।

इसके अलावा 'सेज' के खिलाफ खड़े एक हिस्से द्वारा इनके निर्माण के पीछे साम्राज्यवादी भूमण्डलीकरण के तर्क को भी ढूंढा जा रहा है, जो इस बात से निगमित होता है कि 1947 के बाद के आर्थिक विकास को - विशेषकर 1991 के बाद शुरू हुए 'नये आर्थिक सुधारों' को आप किस तरह समझते हैं। दरअसल परिवर्तनकारी समूहों का एक धड़ा इस बात को मंत्रोच्चार की तरह रटता आया है कि 15 अगस्त 1947 को हमें वास्तविक आज़ादी नहीं मिली और आज भी साम्राज्यवाद की कठपुतली लोग हमारे यहां शासन कर रहे हैं। विगत साठ साल के तमाम आर्थिक परिवर्तनों को वह उसी चश्मे से देखते हैं, क्योंकि उनके लिए आज भी साम्राज्यवाद ही भारतीय जनता की किस्मत का नियन्ता है। आज़ादी के बाद साठ साल के आर्थिक परिवर्तनों को या इस अन्तराल में दो साम्राज्यवादी खेमों के बीच अपने आप को धीरे-धीरे मजबूत कर ले जाने की उसकी स्थिति को देखें तो हम अन्दाज़ा लगा सकते हैं कि साम्राज्यवाद को सर्वशक्तिमान मान लेने का मतलब होता है, जनता के तमाम संघर्षों की उसकी साम्राज्यवाद विरोधी भावना की उपेक्षा करने का।

साम्राज्यवाद की चौधराहट से कोई इन्कार नहीं कर सकता, लेकिन यह समझदारी बेहतर एवं अधिक सन्तुलित मालूम पड़ती है कि विशेष आर्थिक क्षेत्र के निर्माण से सबसे अधिक यहां के निजी या सार्वजनिक उद्यम लाभान्वित होंगे - देश में बन रहे तमाम विशेष आर्थिक क्षेत्रों पर एक निगाह डाल कर आप देख सकते हैं कि उनसे किस तरह अम्बानी बन्धुओं, टाटा, बिड़ला या मंगलौर रिफायनरी जैसे सार्वजनिक समूहों को जबरदस्त फायदा हो रहा है। अब इनके माध्यम से ही वैश्विक पूंजी भी लाभान्वित होगी। एक स्थूल आकलन के हिसाब से 'सेज' के निर्माण से पांच साल के अन्दर राज्य को 1.75 लाख करोड़ रुपये की वित्तीय हानि होगी। यह इतनी बड़ी रकम है कि इसके ज़रिये हर रोज भूखे सो जाने वाले 32 करोड़ नागरिकों को सालों तक खाना खिलाया जा सकता है या आने वाले पांच सालों तक हर ग्रामीण परिवार के दो सदस्यों को गारन्टीशुदा रोजगार दिया जा सकता है।

एक तरह से देखें तो चीन की तरह भारत के तेजी से आर्थिक विकास करने के ख्वाब परोसने वाले यहां के शासकवर्ग ने 'सेज' का रास्ता इसीलिए चुना है क्योंकि यहां के पूंजीपतियों की तिजोरियों को मालामाल किया जा सके, उनकी मुनाफे की दर को जबरदस्त बढ़ाया जा सके। और इसकी कीमत यहां की मेहनतकश जनता को चुकता करनी पड़े। और इसका विपरीत असर यहां के पर्यावरण पर भी हो।

अब अगर 'सेज' विरोधी आन्दोलनों की भविष्ययात्रा पर निगाह डालें तो एक बात स्पष्टता के साथ उभरती है कि अगर जमीन के मसले को सरकारों ने हल कर लिया तो इन आन्दोलनों के अपने वजूद पर प्रश्नचिन्ह खड़ा हो सकता है।

न्यूयार्क टाइम्स के ब्युरो चीफ हावर्ड फ्रेन्च के मुताबिक (इण्टरनेशनल हेराल्ड ट्रिब्युन, 17 दिसम्बर 2006) ''..साल भर तक शेनछेन का आसमान दमघोंटू धुएं से भरा रहता है, यहां की अपराध दर शांघाई से नौ गुना है। हाड़तोड़ मेहनत करके हर माह महज 80 अमेरिकी डॉलर कमाया जा सकता है।'' सभी जानते हैं कि यही शेनझेन है जहां 'रीयल इस्टेट के शार्क अभी से आप पर निगाह डाले बैठे हैं', वही भारत के 'सेज' का मॉडल है।

क्या पूंजीपतियों को मुनाफे की लूट की छूट देने वाले और मेहनतकश अवाम को सारे हकों से वंचित करने वाले और पर्यावरण को भी तबाह करने वाले 'विकास के यह टापू' किसी भी तरह से देश की जनता का भला कर सकते हैं ?

जनसंहारों में न्याय !

■ सुभाष गाताड़े

क्या किसी ने हिटलर द्वारा निर्मित आशवित के यातनाशिविरों के बारे में सुना है ? वही यातनाशिविर जहां ग्यारह लाख से अधिक लोग -जिनका बहुलांश यहुदियों का था - कालकवलित हुए थे। इतिहास इस बात का गवाह है कि वर्ष 1940 से 45 के बीच हुई इन मौतों में से अधिकतर मौतें साइनाइड जैसी जहरीली गैसों से युक्त गैसचेम्बरों में हुई थी, जिन्हें नात्सी तूफानी दस्तों ने विशेष तौर पर खड़ा किया था, कई लोग भूख-प्यास से तड़प-तड़प कर मर गए थे, कुछ लोग अत्यधिक श्रम और कुपोषण का शिकार हुए थे।

क्या आज़ाद हिन्दोस्तां में आशवित जैसे किसी यातनाशिविर की कल्पना की जा सकती है ?

वे जिन्होंने बंटवारे के खूनी फसाद में अपने आत्मियों को खोया है, वे जिन्होंने 1984 के सिखविरोधी जनसंहार में अपनी आंखों के सामने अपनों को जिन्दा जलते देखा है, वे जिन्होंने किसी किझेवनमन्नी में, किसी हाशिमपुरा में, किसी चुंदूर में, किसी कुम्हेर में बेगुनाहों की लाशों से पटती सड़कों एवं नहरों को देखा है, वे अपनी आंखों में फैले अन्तहीन रेगिस्तान की बीरानी लिये आप को बता सकते हैं कि आशवित यहां कहीं भी घटित हो सकता है, किसी छोटे से गांव में, किसी शहर में या कभी-कभी समूचा सूबा ही आशवित बन कर आप के सामने नमूदार हो सकता है - अहिंसा के प्रतीक किसी शख्स के नाम से जाना जाने वाला प्रांत किसी अलसुबह मध्ययुग के बर्बरों के कारनामों को 21 वीं सदी में दोहराता दिख सकता है।

"वे जिन्होंने बंटवारे के खूनी फसाद में अपने आत्मियों को खोया है, वे जिन्होंने 1984 के सिखविरोधी जनसंहार में अपनी आंखों के सामने अपनों को जिन्दा जलते देखा है, वे जिन्होंने किसी किझेवनमन्नी में, किसी हाशिमपुरा में, किसी चुंदूर में, किसी कुम्हेर में बेगुनाहों की लाशों से पटती सड़कों एवं नहरों को देखा है, वे अपनी आंखों में फैले अन्तहीन रेगिस्तान की बीरानी लिये आप को बता सकते हैं कि आशवित यहां कहीं भी घटित हो सकता है, किसी छोटे से गांव में, किसी शहर में या कभी-कभी समूचा सूबा ही आशवित बन कर आप के सामने नमूदार हो सकता है।"

बताया जाता है कि दूसरे विश्वयुद्ध के बाद न्यूरेम्बर्ग मुकदमे में आशवित के संचालकों पर भी मुकदमा चला और उन्हें सज़ा ए मौत दी गयी। आज यह हकीकत है कि पोलैण्ड की राजधानी वारसा से 270 किलोमीटर दूर स्थित आशवित के इस बन्दीगृह में हर रोज सैकड़ों की तादाद में मुसाफिर - जिनमें से अधिकतर यहुदी होते हैं - दुनिया के कोने कोने से पहुंचते हैं। वे इस बात का मुआयना करते हैं कि किस तरह तमाम निरपराध लोग वहां मारे गये होंगे। और मन ही मन शायद यह संकल्प लेते हैं कि अब कोई आशवित न हो।

पिछले दिनों चर्चित अंग्रेजी पत्रिका 'तहलका' ने वर्ष 2002 में सामने आए गुजरात जनसंहार के बारे में किए अपने स्टिंग आपरेशन के बारे में अपनी रिपोर्ट को लोगों के साथ साझा किया। यूं लगा कि नात्सी विचारधारा के हिमायती रूडाल्फ होस, डॉ. जोसेफ मेंगेल, डॉ. क्लार्क क्लाउबर्ग, आर्थर लिबेनशेल, रिचर्ड बेर और उनके जैसे तमाम लोग जिन्होंने आशवित को मुमकिन बनाया, जिन्हें मानवता के खिलाफ किए अपने अपराधों के लिए आशवित के सामने ही फांसी दी गयी, वही लोग अपनी कब्र से उठ कर लौट आये हों, जिनके नाम कहीं बाबू बजरंगी हों, जयदीप पटेल हों, भाई तोगड़िया हों या हिन्दूहृदय सम्राट मोदी हों।

अदालत के सामने दिए अपने बयान में यातना शिविर के प्रमुख संचालक रूडॉल्फ होस ने आशवित्झ की कार्यप्रणाली का चित्रमय विवरण पेश किया, अपनी आत्मकथा में भी उसने इसका विस्तृत वर्णन किया था कि किस तरह वहां लोगों को मारा जाता था, किस तरह वहां बन्दी बनायी गयी स्त्रियों पर सन्ततिनियमन के नाम पर 'वैज्ञानिक' प्रयोग किए जाते थे,

किस तरह उनके मूत्राशय में कास्टिक रसायनों का इंजेक्शन दिया जाता था, किस तरह शिविर का डॉक्टर जोसेफ मेंगेल वहां बिना बेहोशी की दवा दिए पुरुषों के वंध्याकरण के 'प्रयोग' करता था। जिन लोगों ने बाबू बजरंगी, अनिल पटेल, हरेश भट्ट, धीमन्त पटेल या हिन्दुत्व के अन्य 'रणबांकुरों' के वक्तव्य पढ़े हैं या उनके बारे में सुना है जहां वे गड्डे में छिपे अल्पसंख्यकों पर तेल डाल कर उन्हें जिन्दा जलाते या किसी गर्भवती का पेट चीर कर उसके भ्रूण को तलवार पर नचाते या घरों में एलपीजी सिलेण्डर फेंक कर उन्हें ध्वस्त करते दिखते हैं या विश्वविद्यालयों के प्रोफेसरों के कारों में रख कर बम-पिस्तोल और तलवारों को जगह-जगह भेजते दिखते हैं, तो आप क्षण भर के लिए यह सोचने के लिए विवश हो सकते हैं कि बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में घटित हुई आशवित की छायायें आखिर कितना दूर तक हमारा साथ देती आगे बढ़ेंगी।

वैसे गुजरात 2002 के जनसंहार के बारे में उजागर होते तथ्यों की रौशनी में अगर हम इसके पहले के जनसंहारों की बात करें, फिर वह आज़ाद हिन्दोस्तां के दलितों के पहले जनसंहार के रूप में जाना गया किझेवनमन्नी का जनसंहार (1969) हो - जिसमें खेतमजदूरी में बढ़ोत्तरी को लेकर संघर्ष कर रहे मजदूरों के घरों पर हमला करके चालीस से अधिक महिलाओं एवं बच्चों को जिन्दा जला दिया गया था - या वर्ष 1984 में इन्दिरा गांधी की हत्या के बाद कांग्रेसी शोहदों की पहल पर संगठित सिखों का जनसंहार हो - जिसमें अकेले दिल्ली में 2,700 से अधिक सिख मार दिये गये थे - या वर्ष 1987 में सामने आया हाशिमपुरा का कत्लेआम हो - जिसके अन्तर्गत पुलिस-पीएसी के जवानों ने दिन दहाड़े 42 मुसलमानों को मौत के घाट उतार दिया था - हम इन सब में समानता एक सूत्र अवश्य पा सकते हैं। वह यही कि किसी भी मामले में अपराधियों को सज़ा नहीं हुई। किझेवनमन्नी के दलितों के जनसंहार के बारे में बेदाग छोड़ दिये गये सवर्ण भूस्वामियों के बारे में अदालत का फैसला मशहूर है, जिसमें उसने कहा था कि 'ये उंचे तबके के लोग हैं, इनसे उम्मीद नहीं की जा सकती कि वे पैदल उस बस्ती तक गए होंगे।'

इतिहास इस बात का गवाह है कि दूसरे विश्वयुद्ध की समाप्ति के बाद विश्व के गणमान्य मुल्कों में दूसरे विश्वयुद्ध की विभीषिका से बाहर निकलने के, अगर ऐसी कोई स्थिति उभरती है तो उसे काबू में करने के उपाय ढूंढने की कोशिश हुई। कहा जा सकता है कि आशवित फिर कभी न हो उसके लिए उपाय ढूंढने पर भी बात हुई। इसी सन्दर्भ में जनसंहार को परिभाषित करने और उस पर पाबन्दी लगाने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों को सार्वभौमिक स्वीकार्यता दिलाने की कोशिश इसी दौरान आगे बढ़ी। दूसरे विश्वयुद्ध के तमाम कातिलों पर चले 'न्यूरेम्बर्ग मुकदमे' इसी समझदारी के अन्दर चले, जिसके तहत जर्मनी के शहर न्यूरेम्बर्ग में उन तमाम अग्रणी लोगों पर - जिनमें से कुछ फरार भी थे - मुकदमे चला कर उन्हें सज़ाएं सुना दी गयीं।

अगर हम 9 दिसम्बर 1948 को संयुक्त राष्ट्रसंघ की आमसभा द्वारा जनसंहार को लेकर पारित प्रस्ताव का विवरण देखें और 12 जनवरी 1951 से लागू हुए 'कन्वेन्शन ऑन द प्रिवेन्शन एण्ड पनिशमेण्ट ऑफ द क्राइम ऑफ जेनोसाइड' को पलटें तो पाएंगे कि इन कन्वेन्शंस के ज़रिये विश्व जनमत ने अपने इस संकल्प को ही रेखांकित किया कि अब कोई आशवित न हो। प्रस्तुत कन्वेन्शन में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर स्वीकृत जनसंहार की परिभाषा है जिसे कई देशों के राष्ट्रीय आपराधिक कानून में भी शामिल किया गया और अन्तर्राष्ट्रीय अपराध न्यायालय को स्थापित करने की बुनियाद बने अन्तर्राष्ट्रीय अपराध न्यायालय की रोम संहिता/स्टेच्यू द्वारा भी स्वीकारा गया। प्रस्तुत कन्वेन्शन की धारा दो जनसंहार को इस तरह परिभाषित करती है कि ऐसी कोई भी कार्रवाई जो किसी राष्ट्रीय, नस्लीय या धार्मिक समूह को समाप्त करने के इरादे से की गयी हो जिसके अन्तर्गत समूह के सदस्यों को मारा जाता हो, इन सदस्यों को शारीरिक या मानसिक चोट पहुंचायी जाती हो, ऐसे हालात पैदा किए जाते हों कि ऐसे समूहों की भौतिक बरबादी को अंजाम दिया जा सके।

अब जहां तक जनसंहार को लेकर बने अन्तर्राष्ट्रीय कन्वेन्शन का सवाल है, भारत सरकार ने वर्ष 1959 में ही उस पर अपनी सहमति बताते हुए हस्ताक्षर किए हैं, लेकिन अभी तक उसने उसके मुताबिक अपने घरेलू कानूनों में परिवर्तन नहीं किए हैं। साफ है यह भारत सरकार के कर्णधारों का विरोधाभासी रुख है, जहां वह अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर अपनी बेहतर छवि पेश करते हैं, लेकिन राष्ट्रीय स्तर पर उसके अनुकूल आचरण नहीं करते हैं।

इस स्थिति को बदलने की आवश्यकता है। आशवित की छायायें 21 वीं सदी की शुरुआत में भी हमारे साथ चली आयी हैं, लेकिन हमें अब यही तय करना है कि उनसे हमें कितना जल्द मुक्त होना है !

सामाजिक प्रतिरोध का आतंकवादीकरण

■ सुभाष गाताड़े

पिछले दिनों चन्द अख़बारों ने सामाजिक कार्यकर्ता रोमा तथा उसके अन्य सहयोगियों की सोनभद्र, उत्तर प्रदेश पुलिस द्वारा की गयी गिरफ्तारी की चर्चा की है। जैसा कि रिपोर्टों से साफ है फुले-अम्बेडकर-भगतसिंह-बिरसा मुण्डा आदि की प्रेरणा से सोनभद्र के आदिवासीबहुल अंचल में सक्रिय रोमा की गतिविधियों से - जिसके तहत वह आदिवासियों तथा अन्य वंचित समूहों को उनके संविधानप्रदत्त अधिकारों के बारे में अवगत कर रही थीं और इन अधिकारों को हासिल करने के लिए शान्तिपूर्ण आन्दोलन के लिए प्रेरित कर रही थी - वे तमाम ताकतें परेशान थीं, जिनके हितों पर इससे चोट पड़ती दिख रही थी।

अन्दाज़ा लगाया जा सकता है कि इन ताकतों ने - चाहे वे बड़े भूस्वामी हों या खदानों के मालिक हों - कानून-व्यवस्था के अलम्बरदारों को इस बात के लिए उकसाया होगा कि शान्तिपूर्ण ढंग से ऐसे लोगों का जनान्दोलन करना भविष्य में किस तरह की अशान्ति को जन्म दे सकता है, लिहाजा उसे सलाखों के पीछे डाल दें।

यह कहना क्लिशे/घिसीपीटी बात लग सकती है कि 'आतंकवादी' कह कर सलाखों के पीछे डाले जाने वालों में रोमा अकेली नहीं है।

पिछले दिनों सूबा मध्यप्रदेश जहां भाजपा की हुकूमत कायम है, वहां से समाचार मिला था कि समाजवादी जन परिषद के कार्यकर्ताओं शमीम मोदी एवं अनुराग मोदी को चन्द जिलों से तड़ीपार करने का आदेश जारी हुआ है। भाजपा शासित दूसरे एक राज्य छत्तीसगढ़ में बच्चों के एक डाक्टर विनायक सेन को काले कानूनों के सहारे 'नक्सलियों का सरगना' बना कर जेल में ठूंसे जाने के खिलाफ तो राष्ट्रव्यापी मुहिम चल रही है। सूबा कर्नाटक, जहां जनता दल एवं भाजपा की मिलीजुली सरकार है, वहां पिछले दिनों सरकार ने सामाजिक कार्यकर्ताओं में एक अलग ढंग से आतंक पैदा करने की कोशिश की। कर्नाटक पुलिस ने अग्रणी सामाजिक कार्यकर्ताओं एवं जनसंगठनों के नामों वाली सूची जारी करते हुए यह ऐलान किया कि यह 'नक्सलियों' की सूची है। जब प्रस्तुत सूची में साम्प्रदायिकता के लिए सक्रिय संगठन 'कौमु सौहार्दु वैदिके' तथा कुद्रेमुख नेशनल पार्क के निर्माण से होने वाले विस्थापन के लिए लड़ने वाले लोगों के नाम शामिल पाए गए और जिसे लेकर काफी हंगामा हुआ, तब पुलिस ने उपरोक्त सूची वापस ली। निश्चित ही भाजपा, जनता दल की तरह कांग्रेस इस मायने में कम नहीं है। आंध्र प्रदेश में नक्सल दमन के नाम पर कितने मासूमों को अतिवादियों का सहयोगी कह कर खत्म किया गया है, इसकी विधिवत सूची भी नहीं है।

निश्चित ही लोगों, संगठनों की इस फेहरिस्त को और आगे बढ़ाया जा सकता है। और देखा जा सकता है कि किस तरह विभिन्न पार्टियों की हुकूमतें अपने अपने यहां सामाजिक प्रतिरोधों को आतंकवादी कार्रवाइयों का विस्तार कहने में जुटी हैं। इसी का एक दूसरा प्रतिबिम्ब हम 'ह्यूमन राइट्स वॉच' की रिपोर्ट 'ब्रोकन पीपल' में देख सकते हैं जहां बताया गया है कि दलितों के उभार को तोड़ने के लिए सामाजिक कार्यकर्ताओं पर फर्जी आपराधिक मुकदमे कायम कर उन्हें जेल भेजा जाता है। कई मामलों में तो जुझारू दलित कार्यकर्ताओं पर देशद्रोह तक के मुकदमे दर्ज किए गए हैं। इस प्रक्रिया को उन्होंने सामाजिक कार्य का अपराधीकरण नाम से सम्बोधित किया है।

वैसे ऐसी बात नहीं कि इसमें कुछ नया है। हर दौर में हुकूमतें अपने विरोध को कमजोर करने के लिए इसी तरह का कोई नुस्खा ढूंढ लेते रहे हैं। ब्रिटिश भारत में हम देखते हैं कि कई स्वतंत्रता सेनानियों पर 'बोल्शेविक' होने के आरोप में, कम्युनिस्ट समर्थक होने के आरोप में मुकदमे चले। 9/11 के बाद दुनिया के चौधरी कहलाने वाले अमेरिकी राष्ट्रपति बुश की तर्ज पर हमारे यहां के हुक्मरानों ने भी 'आतंकवाद' को ढूंढ निकाला है, जिसके अन्तर्गत वे हर प्रतिरोध को 'आतंकी' घोषित करने में आमादा दिखते हैं। गौरतलब है कि अपने यहां की विशिष्ट परिस्थितियों में जबकि देश के महत्वपूर्ण हिस्से में इंकलाबी सरगर्मियां जोरों पर हैं, लिहाजा यहां पर कई बार 'नक्सली' या आतंकवादी शब्द का समानार्थी प्रयोग किया जाता है।

यह नहीं भूलना चाहिए कि 'आतंकवाद का यह हौव्वा' लोगों की निगाह में अपनी वैधता बनाये रखने का, अपने दमनतंत्र की आवश्यकता को बनाये रखने का मौका हुकूमत को प्रदान करता है। उसी 9/11 के बाद अमेरिका, ब्रिटेन से लेकर पश्चिमी जगत के तमाम देशों में आतंकवाद रोकने के नाम पर जिस किस्म के दमनात्मक कानूनों को मंजूरी मिली, उससे सभी वाकिफ हैं। स्थितियां अब यहां तक पहुंची हैं कि इन देशों में यह एक नया सहजबोध विकसित हुआ है कि आतंकवाद से बचना है तो कुछ नागरिक अधिकारों को तो छोड़ना ही पड़ेगा। पिछले दिनों ब्रिटेन के प्रधानमंत्री ब्राऊन ने राष्ट्र के नाम अपने

सम्बोधन में बाकायदा कह दिया कि ‘जनता को और नियंत्रणों के लिए तैयार हो जाना चाहिए, यह उनके हित में है।’ यह बताने की जरूरत नहीं कि इस बयान का कोई विरोध नहीं हुआ।

लेकिन मामला महज आतंकवाद को रोकने तक सीमित नहीं है। इन देशों में भी सामाजिक आन्दोलनों को इसी तर्ज पर ‘आतंकवादी’ घोषित करने का चलन अब आम हो चला है। पिछले दिनों ग्लोबल वार्मिंग के खिलाफ लन्दन के हीथ्रो हवाई अड्डे पर एक प्रचण्ड प्रदर्शन के वक्त् पुलिस ने हाल के आतंकवाद विरोधी कानून की धारा का इस्तेमाल करते हुए लोगों का तलाशी अभियान शुरू किया। इसी दौरान सरकार द्वारा जारी एक दस्तावेज में बाकायदा चेतावनी भी दी गयी कि ऐसे किसी गैरकानूनी प्रदर्शन से ‘मजबूती’ से निपटने के लिए पुलिस आतंकवाद विरोधी कानूनों का खुल कर इस्तेमाल करेगी। जुलाई के प्रथम सप्ताह में एल साल्वाडोर के सुचितातो शहर में जब पानी के विकेन्द्रीकरण की योजना के खिलाफ जनप्रदर्शन हुआ, तो 14 प्रदर्शनकारियों को आतंकवाद विरोधी कानूनों के तहत गिरफ्तार किया गया।

निश्चित ही हुकूमत का संचालन करने वालों को इस कदर मासूम नहीं समझा जा सकता कि वे राजनीतिक-सामाजिक विरोध तथा प्रदर्शन में एवं आतंकवादी गतिविधि में फर्क नहीं कर पाते हों। लेकिन अन्य सामान्य कानूनों के बजाय आतंकवाद विरोधी कानूनों का बार-बार सहारा लेना उन्हें इस वजह से मुफीद जान पड़ता है क्योंकि वह असीमित ताकत प्रदान करता है।

अम्न पुर अम्न ज़िंदगी के लिए

6 दिसंबर 2007, बाबरी मस्जिद विध्वंस के पंद्रह वर्ष

ठीक पंद्रह वर्ष पूर्व अयोध्या में बाबरी मस्जिद का विध्वंस उन सांप्रदायिक ताकतों की लंबी साजिश का परिणाम था जो कभी भी देश में सामाजिक सौहार्द कायम नहीं होने देना चाहते। बाबरी मस्जिद का विध्वंस किसी एक ढांचे का विध्वंस नहीं माना जा सकता ये एक ऐसा प्रतीक है जोकि हमारे सामाजिक ताने-बाने को उधेड़ने की एक कामयाब कोशिश थी साथ ही ये एक बड़ा प्रयोग था कि यदि इतनी बड़ी आपराधिक घटना घट जाए तो हमारा समाज उस पर कैसी प्रतिक्रिया देगा और लंबे समय में संघ गिरोह जैसी ताकतों को अपने दूरगामी हिंदू राष्ट्र के स्वप्न को साकार करने में कितनी मदद करेगा। दुर्भाग्यवश राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ और उसके सहयोगी संगठनों की पहली प्रयोगशाला सफल रही। देश में दंगे हुए, पूरे समाज में रोष झलका लेकिन धीरे-धीरे सब कुछ सामान्य हो गया। निश्चित रूप से संघ गिरोह के लिए ऐसी स्थिति बड़ी उत्साहवर्द्धक रही होगी। यदि ऐसा न होता तो बाबरी मस्जिद के विध्वंस के लगभग 10 वर्ष बाद एक दूसरी लेकिन पहली से कहीं अधिक खतरनाक प्रयोगशाला गुजरात न बनता। 2002 में गुजरात में जो जनसंहार हुआ उसका इतिहास दोहराने की आवश्यकता नहीं। लेकिन इस जनसंहार के संदर्भ में दो-एक बातें निश्चित रूप से उल्लेख की जानी चाहिए। पहली बात तो ये कि उग्रवादी हिंदुत्व की ये कार्यशाला इतनी नृशंस होते हुए भी अपेक्षित कामयाबी हासिल कर सकी। इतना ही नहीं इसने नरेंद्र मोदी को अगले विधानसभा चुनाव में अभूतपूर्व सफलता दिलाने में भी बहुत मदद की। इसका दूसरा पक्ष राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के लिए उतना ही उत्साहवर्द्धक रहा होगा जितना कि उत्साहवर्द्धक बाबरी मस्जिद विध्वंस की घटना थी। दोनों का कारण एक ही। जिस तरह बाबरी मस्जिद विध्वंस की घटना एक प्रतीक बनकर इतिहास की गर्त में चली गई ठीक वही गुजरात के जनसंहार के साथ भी हुआ। और ये स्थिति किसी आने वाली भयानक और अभूतपूर्व घटना का संकेत भी बन सकती है। दोनों ही घटनाओं ने लोकतांत्रिक ढांचे और प्रक्रियाओं को हास्यास्पद बना दिया। आज जब इस कट्टर हिंदुत्ववादी प्रयोगशाला के पहले परीक्षण अर्थात् बाबरी मस्जिद विध्वंस के पंद्रह वर्ष पूरे हुए तो उसी लोकतंत्र की पुनर्स्थापना के नाम से साझे संघर्ष और उसके प्रति एकजुटता का संदेश लेकर दिल्ली के नागरिक संगठन, बुद्धिजीवी, कवि, पत्रकार और सांस्कृतिक कवियों ने त्रिवेणी कला संगम के ओपन एयर थियेटर में एक कार्यक्रम आयोजित किया, जिसमें बड़ी संख्या में एकत्र लोगों ने परिस्थितियों के प्रति अपने गहरे सरोकार व्यक्त किए और साझे संघर्ष का संकल्प लिया। इस कार्यक्रम में अभिव्यक्ति के मुख्य माध्यम के रूप में सांस्कृतिक अभिव्यक्ति को ही केंद्र में रखा गया। कार्यक्रम का आयोजन आईएसडी, सहेली, जागोरी, एचआरएलएन, पीस, इंसाफ, अनहद एवं अन्य संगठनों के तत्वावधान में हुआ।

और कितने विर्क?

पुलिस एवं आतंकवादियों के बीच कायम सांठगांठ के बारे में चन्द बातें

■ **सुभाष गाताड़े**

अगर सूबे का पूर्व डीजीपी सलाखों के पीछे हो, अपने गुर्गों के ज़रिये युद्धविधवा की जमीन कब्जा करने के उस पर आरोप लगे हों और उस पर मुकदमा कायम करने के लिए भारतीय दण्ड संहिता की ऐसी धाराओं का प्रयोग किया गया हो जिनका आम तौर पर उपयोग नहीं होता, तो आप क्या कहेंगे?

गौरतलब है कि पंजाब के पूर्व डीजीपी एस. एस. विर्क, जिन पर पंजाब विजिलेंस ब्यूरो द्वारा 9 सितम्बर को आय से अधिक सम्पत्ति अर्जित करने, कानून की निगाह से बच निकले व्यक्ति को नयी 'पहचान' प्रदान करने जैसे आरोप लगाये हैं, वे इन्हीं आरोपों के तहत इन दिनों जेल में हैं। बताया जाता है कि जल्द ही उनकी जमानत याचिका पर सेशन कोर्ट में सुनवाई होने वाली है। इसमें कोई दो राय नहीं कि पूर्व मुख्यमंत्री अमरिन्दर सिंह के बेहद करीबी रहे विर्क के लिए - जिनकी उन दिनों काफी तूती बोलती थी - यह समूची स्थिति एक सदमे से कम नहीं होगी।

लेकिन सोचने का सवाल बनता है कि ऐसी क्या स्थिति पैदा हुई कि उन्हें अन्दर करने के लिए कुछ खास धाराओं का इस्तेमाल किया गया? और ऐसी क्या बात हुई है कि विर्क की गिरफ्तारी पूरे देश में मुद्दा-ए-बहस बनी है?

दरअसल पंजाब के पूर्व डीजीपी एवं सेवारत आई. पी. एस. अधिकारी एस. एस. विर्क की गिरफ्तारी ने कई पुराने घावों को कुरेदा है और खालिस्तानी आतंकवाद का खात्मा करने के नाम पर पंजाब पुलिस ने उठाये तमाम मानवद्रोही कदमों के घावों को नये सिरे से ताजा किया है।

अकाली दल की मानवाधिकार शाखा के अध्यक्ष जसवन्त सिंह कालडा की रहस्यमय मौत की कहानी ताजा होती है, जिन्होंने काफी मेहनत करके ऐसे हजारों लोगों के सामूहिक तौर पर किए गए दाह-संस्कार का मामला उजागर किया था, जिन्हें पुलिस के अपने रजिस्टर में 'अज्ञात' घोषित किया गया था। या वह दर्दनाक कहानी की याद भी ताज़ा होती है कि किस तरह अस्पताल के लाश घर में अधमरे पहुंचाये गये व्यक्ति को पुलिस वाले वहीं से उठा कर ले गये और बाकायदा मार डाल कर फिर लाश की शक्ल में उसे उसी अस्पताल में लौटाया था।

पंजाब के पूर्व मुख्यमंत्री जनाब अमरिन्दर सिंह के करीबी रह चुके इस अफसर की गिरफ्तारी भले ही अपनी आय से अधिक सम्पत्ति अर्जित करने, आधिकारिक पद का दुरुपयोग करने और सरकारी सेवा में रहते हुए बिजनेस करने आदि कारणों से हुई हो, लेकिन फिलवक्त अधिक विवाद एक बिल्कुल अलग मामले में खड़ा हुआ है। विर्क पर आरोप है कि उन्होंने एक पूर्व आतंकवादी सुखविन्दर सिंह सुक्खी को एक नयी 'पहचान देकर' न केवल उसका इस्तेमाल किया बल्कि इस तरह कानून की आंखों में धूल झोंकी।

पंजाब विजिलेन्स ब्यूरो ने उन्हें भारतीय दण्ड विधान की धारा 216 और 218 के तहत गिरफ्तार किया है। धारा 216 सन्दर्भित होती उन मामलों में जहां आप हिरासत से भागे किसी अपराधी को शरण देते हैं या ऐसे व्यक्ति को शरण देते हैं जिसकी पुलिस को तलाश हो। धारा 218 सन्दर्भित होती है उन मामलों में जहां कोई सरकारी नौकर गलत रेकॉर्ड बनाता है या व्यक्ति विशेष को सज़ा से बचाने के लिए रेकार्ड में हेराफेरी करता है। दिलचस्प बात है कि जनाब विर्क ने धारा 216 तथा 218 के तहत दायर आरोपों से इंकार कतई नहीं किया है बल्कि उन्होंने कहा है कि इसमें मैंने क्या अजूबा किया, सभी लोग यही करते आए हैं। उन्होंने ऐसे तमाम अफसरों के नाम उजागर करने की भी बात कही है जिन्होंने इसी तरह सरेण्डर्ड आतंकवादियों को पुलिस की सेवा में लगा दिया था।

अगर पंजाब पुलिस की जुबां में कहें तो ऐसे लोगों को 'कैट' कहा जाता है, ऐसे लोग जो कभी आतंकवादी/मिलिटेण्ट संगठन से जुड़े थे, लेकिन जिन्होंने पुलिस के लिए काम करना तय किया है। कहा जाता है कि एक जमाने में पंजाब पुलिस के पास ऐसे तीन सौ से अधिक 'कैट' मौजूद थे। कई मानवाधिकार कार्यकर्ताओं का तो यह भी दावा है कि पुलिस ने किसी दूसरे व्यक्ति को फर्जी मुठभेड़ में मार डाला और यह दावा किया कि कोई कुख्यात आतंकवादी मारा गया, जबकि उपरोक्त 'कुख्यात आतंकवादी' को उन्होंने 'कैट' बना कर अपने काम में लगा दिया। सुखविन्दर सुक्खी के मामले में विर्क ने यही किया। उन्होंने न केवल यह बताया कि सुक्खी मर गया है, जबकि वह छिपा था। पुलिस ने लुधियाना स्थित सुक्खी के घर पर छापा भी डाला था, जहां से वह भाग निकला था।

यह जानना महत्वपूर्ण है कि विर्क की गिरफ्तारी में अपना हाथ होने से मुख्यमंत्री बादल ने इन्कार किया है, उन्होंने कहा है कि यह विजिलेन्स ब्यूरो का मामला है और वह इस मामले में कुछ टिप्पणी नहीं करना चाहते। इधर विर्क की तरफदारी में पूर्व मुख्यमंत्री अमरिन्दर सिंह ने ही बयान नहीं दिये बल्कि कई वरिष्ठ पुलिस अधिकारियों खासकर के पी एस गिल जैसों ने भी यह कहा है कि 'ऐसा करने से पुलिस का मनोबल गिर सकता है।'

विर्क की गिरफ्तारी के बहाने जो चर्चा चल पड़ी है उसमें यह भी पता चला है कि खुफिया विभाग के रेकार्ड से कई

फाइलें गायब हैं। यह विभाग नहीं जानता कि इस समय वे पूर्व आतंकवादी कहां पर हैं और क्या कर रहे हैं? हालांकि खुफिया विभाग जानता है कि अकेले सुक्खी ने 125 कैट्स विर्क से जोड़ रखे थे। अब खुफिया विभाग को यह जांचने के आदेश भी दिए गए हैं कि आतंकवाद के दौरान किस पुलिस अफसर को आतंकवादी मारने के लिए कितना-कितना ईनाम मिला था।

इसे विडम्बना ही कहा जाएगा कि विर्क प्रसंग के मार्फत जो व्यापक सवाल खड़े हुए हैं, उनके बारे में कोई चर्चा नहीं हो पा रही है।

और हर बार यही होता आया है। फर्जी मुठभेड़ें, गैर-कानूनी हिरासतें, पाशवी यातनायें, भ्रष्टाचार और सबसे बढ़ कर कैट्स के इस्तेमाल के ज़रिये प्रायोजित-संगठित हिंसा। कुछ साल पहले पंजाब के पूर्व डीजीपी जे. एफ. रिबेरो, जिन्हें आतंकवाद के 'गोली का जवाब गोली से देने' की रणनीति बनाने के लिए जिम्मेदार समझा जाता है, उन्होंने यह भी स्वीकारा था कि खालिस्तानी आतंकवादियों से निपटने के लिए पंजाब पुलिस ने अपनी ओर से भी ऐसे 'फर्जी खालिस्तानी गिरोह' खड़े किए थे।

कोई यह प्रश्न पूछ सकता है कि आखिर पंजाब में 'अमन चैन' कायम होने के बाद अब पुराने घावों को क्यों कुरेदा जा रहा है। यह समझने की जरूरत है कि यह कोई पंजाब का मामला नहीं है। विगत कुछ वर्षों में यही सिलसिला, विभिन्न सरकारों द्वारा अपने-अपने इलाके के उग्र आन्दोलनों के दमन के लिए, दोहराया जाता रहा है। पंजाब के कैटस या असम के सरेण्डर्ड उल्फा आतंकवादियों के ज़रिये खड़ा किया गया 'सुल्फा' नामक सरकारी आतंकी संगठन या आंध्र प्रदेश जैसे इलाकों में पूर्व नक्सलवादियों के ज़रिये की जा रही हिंसक वारदातें - यह सब एक ही सिलसिले की कड़ियां हैं।

अक्सर कहा जाता है कि एक 'सही अन्त' उन साधनों को औचित्य प्रदान करता है जो उस मुकाम तक पहुंचाने के लिए इस्तेमाल किए गए थे। और इस पूरी बहस में हम समझ नहीं पाते कि गैर-राज्य कारकों (non state actors) के - फिर वह चाहे खालिस्तानी या अन्य कोई अतिवादी समूह हो - 'आतंकवाद' के बरअक्स हम 'राज्य आतंकवाद' को महिमामण्डित कर रहे हैं। और यह नहीं समझ पा रहे हैं कि दरअसल राज्य आतंकवाद सभी समस्याओं को कानून एवं व्यवस्था की समस्या समझने की हुकूमती तबकों की समझदारी का विस्तार है। और ऐसा कोई भी रुख ऐसी समस्याओं की सामाजिक और आर्थिक जड़ों की अनदेखी करता है और इनके राजनीतिक समाधान के लिए हमेशा के लिए दरवाजे बन्द कर देता है।

केन्द्र सरकार के ब्लैक कैट कमाण्डो के एक जवान सतवन्त सिंह माणेक द्वारा पंजाब-हरियाणा हाईकोर्ट में दायर एक याचिका की ख़बर कई साल पहले अख़बार 'पंजाबी ट्रिब्युन' में छपी थी। यह उन दिनों की बात है जब आधिकारिक तौर पर पंजाब खालिस्तानी आतंकवाद से 'मुक्त' हो गया था। याचिका में पंजाब पुलिस द्वारा अंजाम दी गयी एक फर्जी एनकाउण्टर का जिक्र किया गया था जिसके अन्तर्गत ग्यारह निरपराध लोगों को मार डाला गया था। याचिकाकर्ता का कहना था न केवल वह खुद इस घटना का प्रत्यक्षदर्शी रहा है बल्कि जानता है कि इसे इसी वजह से अंजाम दिया गया था क्योंकि 'आतंकवादियों' के बड़े गिरोह का खात्मा करने के नाम पर सम्बन्धित पुलिस अधिकारी मेडल एवं पुरस्कारों के हकदार होना चाहते थे। यह दावे के साथ कहना मुश्किल है कि उपरोक्त याचिका के बारे में उच्च अदालत ने क्या तय किया !

पिछले दिनों गांधीजी के जन्मदिन के मौके पर सरकारों ने इस बात की कसमें खायी कि वह अहिंसा के सन्देश को दुनिया भर में फैलाएंगे ! अपने मुल्क की चहारदीवारी में जारी तमाम किस्म के आन्दोलनों के साथ शान्तिपूर्ण अन्तर्क्रिया को आगे बढ़ा कर ही हम अपनी इस आवाज़ को अधिक ताकतवर बना सकते हैं।

पेशबंदी[1]

पहली वारदात नाके के होटल के पास हुई।
फ़ौरन ही वहाँ एक सिपाही का पहरा लगा दिया गया।

दूसरी वारदात दूसरे ही रोज़ शाम को स्टोर के सामने हुई।
सिपाही को पहली जगह से हटाकर दूसरी वारदात के मक़ाम पर
मतऐयिन[2] कर दिया गया।

तीसरा केस रात के बारह बजे लांडरी के पास हुआ।
जब इंस्पेक्टर ने सिपाही को इस नई जगह पहरा देने का हुक्म दिया
तो उसने कुछ देर ग़ौर करने के बाद कहा : "मुझे वहाँ खड़ा कीजिए जहाँ नई वारदात होनेवाली है...!"

1. किसी काम के होने के पूर्व उसका प्रबंध; 2. नियुक्त, तैनात।

साभार : सआदत हसन मंटो दस्तावेज़-2

सूरज की सातवीं किरण

■ अमृता प्रीतम

अथर्ववेद में विद्या लफ़्ज़ की आत्मा को समझकर उसे बड़ा प्यारा नाम दिया गया है - मधुलता।

कायनात की शक्तियों को जानने की जिज्ञासा भी शहद की मक्खी होती है जो कई फूलों के रस से विद्या का शहद इक्ट्ठा करती है।

लेकिन आगे सारी बात इस विद्या को श्री विद्या बनाने की है, आत्मविद्या बनाने की, परमविद्या बनाने की...

रात काले बीज को आया, सुर्ख़ फूल का सपना

एक बीज के अन्दर कैसा सामर्थ्य होता है यह सपना लफ़्ज़ उस पूरी सम्भावना की बात करता है। बीज की 'मैं' ने चुपचाप मास मिट्टी के अँधेरे में सूखना होता है और फिर अपनी छाती से पनपकर हरी पत्तियाँ बनना होता है और फिर अपने मस्तक में स्वयं ही फूल बनकर खिलना होता है...सुर्ख़ फूल-जिसमें अन्तर्मन का पूरा जलाल होता है।

यह उस सपने का यथार्थ है जो विद्या को श्री विद्या बना लेता है...

अर्जित ज्ञान हुज़रे की माटी है, जिस माटी को सिर्फ़ अन्तर अनुभव-तरंगित कर सकता है...

एमोरी दि राईन कोर्ट अपनी किताब 'शिवा की आँख' में एक कहानी कहते हैं कि पूरब और पश्चिम के कुछ तलबग़ार मिलकर ख़ुदा की तलाश में चल दिये। जाते-जाते एक ऐसा स्थान आया जहाँ से दो रास्ते दिखाई देते हैं। एक तरफ़ जाते हुए रास्ते पर एक संकेत दिया हुआ था कि यह रास्ता ख़ुदा की ओर जाता है और दूसरे रास्ते पर संकेत था कि यह रास्ता आपको वहाँ ले जाएगा जहाँ बहुत बड़े सम्मेलन हो रहे हैं, तक़रीरें हो रही हैं कि ख़ुदा क्या है...

राईन कोर्ट लिखते हैं कि यह दोनों संकेत देखकर पूरब के जिज्ञासु चुपचाप उस राह पर चल दिये जहाँ संकेत था कि यह राह ख़ुदा की ओर जाती है और जो पश्चिम के लोग थे वह जल्दी से उस राह पर चल दिये जहाँ संकेत था कि ख़ुदा के नाम पर बहुत बड़े सम्मेलन हो रहे हैं, तक़रीरें हो रही हैं...

और यह कहानी सुनाकर राईन आहिस्ता से कहते हैं, ''कायनात की शक्तियों का रहस्य अनुभव में उतरना जानता है लेकिन तर्क और तक़रीरों में उतरना नहीं जानता।''

प्रेम और परमात्मा का कोई शास्त्र नहीं होता। अनुभव अन्तर में उतरते हैं, लेकिन सिद्धांत और शास्त्र नहीं बनते। इनकी धड़कती ख़ामोशी जब कभी अक्षरों में उतरती है तो वो अक्षर कहते कुछ नहीं सिर्फ़ संकेत बन जाते हैं। इसीलिए वेद, पुराण, ग्रन्थ, शास्त्र संकेत होते हैं-प्रेम और परमात्मा के होने का।

कहते हैं-एक पहुँचा हुआ फ़क़ीर होता था। उसका मुरीद कई बरस उसकी हाज़िरी में रहा तो एक दिन फ़क़ीर ने कहा-जा बेटा, अब अपनी राह पर जाओ।

मुरीद घबरा गया। फ़क़ीर के पैर पकड़ लिये, कहने लगा-मेरे मुर्शिद, मैं कहाँ जाऊँ ? अब कहीं नहीं जा सकता।

मुर्शिद ने कहा-जाओ, जाकर आसमान के चाँद को देखो।

मुरीद ने और कसकर मुर्शिद के पैर पकड़ लिये, कहा-मुझे आपके बिना और कुछ दिखाई नहीं देता, बस आप और आपकी यह इल्मी किताबें।

मुर्शिद हँस दिया, कहने लगा-पगले, मैं इसीलिए कहता हूँ अब तुम जाओ। तुम्हें सिर्फ़ उँगली दिखाई देती है, चाँद दिखाई नहीं देता, मैं तो उँगली हूँ, ऊपर आसमान में चाँद का संकेत देती हुई। यह इल्मी किताबें भी सिर्फ़ उँगलियाँ हैं और तू उँगलियों को पकड़कर बैठा है, ऊपर कभी आसमान की तरफ़ नहीं देखता...यही उँगलियों को छोड़कर आसमान की तरफ़ देखने की यात्रा अन्तर-यात्रा होती है और इसी अन्तर-यात्रा से विद्या श्री विद्या बनती है।

मैं कह रही थी कि गुरु, पीर और शास्त्र उँगलियाँ होते हैं अन्तर आकाश के चाँद की ओर संकेत करने के लिए। बड़ा क़रम उनका कि वह रास्ते के अँधेरे में संकेत बन जाते हैं।

इसी रोशनी में शाह हुसैन की एक पंक्ति सामने रखती हूँ-औरों से तो हँसती-खेलती शाहों से घूँघट कैसा!

ये उँगलियाँ सिर्फ़ संकेत नहीं करतीं यह बड़ी मेहरबान होती हैं, दुआ भी करती हैं। दूसरी पंक्ति में शाह हुसैन कहते हैं।

''फ़क़ीरों की यही दुआ कि तुम्हें वह ख़ुदा न भूल जाए''

वो यह दुआ करती हैं उस रास्ते के यात्री के लिए कि वह संकेत समझ ले और अपनी मंज़िल की राह पकड़ ले। शाह हुसैन प्यार में भीगकर इस राह के यात्री की तलब को कहता है-कि तू दुनिया से तो हँसती-खेलती है लेकिन शाह तो अन्तर्मन का पीर होता है, अन्तर गुरु, उससे घूँघट कैसा ? तू उसका दीदार क्यों नही करती?

बाहर के गुरु का सही करम यही होता है कि वह किसी को अन्तर गुरु को तलाशने के लिए उसकी तलब को जगा दे। गुरु लफ़्ज़ को तभी अर्थ मिलता है। गु का अर्थ है-अँधेरा, और रु का अर्थ है-रोशनी, अन्तर के अँधेरे में तो अन्तर के गुरु ने ही रोशनी देनी होती है।

जैन चेतना के पास एक बहुत प्यारा लफ़्ज़ है-तीर्थंकर, जिसका अर्थ होता है-नदी का घाट, नदी का पत्तन।

यह पत्तन यात्रा नहीं होते सिर्फ़ संकेत होते हैं कि इस स्थान से आप अपनी नाव में नदी की यात्रा में जा सकते हैं।

इसी तरह सभी मज़हब इनसान के मन के तारों को सुर करने का जतन होते हैं लेकिन तारों में सोये हुए राग इनसान ने अपने रियाज़ से जगाने होते हैं। अपने रियाज़ ने, अपने सूरत ने स्वरों के इश्क़ में।

दूसरे लफ़्जों में यह मज़हब तलब के पैरों के लिए एक ज़मीन

तैयार करते हैं, लेकिन एक हद तक, एक सीमा तक और इनसान ने अपनी अन्तश्चेतना से उस सीमा से निकलकर असीम की ओर जाना होता है।

पूरा भारतीय चिन्तन एक संकेत लीला है

काल और कालमुक्त होने के लिए जब अग्निवेश की तलब जाग गयी तब उसके गुरु अत्रि ऋषि कहने लगे-अग्निवेश! इसके लिए काया-तन्त्र का विज्ञान समझना होगा। समय, काल की गणना के लिए चार युग कहे जाते हैं, वह चारों युग इनसान की काया में होते हैं-

इनसान के सहज सच में भीगा हुआ उसका हर कर्म सतयुग होता है।

जवानी के सपने जब सितारों की गलियों में पहुँच जाते हैं और उसके हर कर्म आसमान की रोशनी को धरती पर उतारता है तो वह समय त्रेतायुग होता है।

जब उम्र पक जाती है मन मस्तक में ज्ञान की लौ आ जाती है तब वह द्वापरयुग होता है।

और इतना कहने के बाद ऋषि ख़ामोश हो गये। अग्निवेश ने पूछा-महर्षि, कलियुग कब होता है?

तो ऋषि ने कहा-हर काल में हो सकता है। जब तन और मन में विकार आते हैं, काम, क्रोध, लोभ और अंहकार उस पर गलबा डाल देते हैं, उसका हर कर्म जब चारों तरफ़ भय बरसाता है, वही समय कलियुग हो जाता है।

विकसित होना-बीज की यात्रा है।

भारत का जातिवाद भी असल में बीज की यात्रा था। प्राचीन ग्रन्थों में हमेशा ये संकेत दिये गये लेकिन ओशो की व्याख्या प्यारे लफ़्ज़ों में है :

''देह शूद्र है, मन वैश्य, आत्मा क्षत्रिय और परमात्मा बाह्मण ।''

ओशो गहराई में उतरते हैं-''देह शूद्र है, क्यों ? क्योंकि देह की दौड़ सिर्फ़ इतनी है-खा लेना, पी लेना, भोग करना, और सो जाना। यह शूद्र की सीमा है जो देह में जीता है वह शूद्र है। शूद्र का अर्थ हुआ-मैं देह हूँ। मन की यह हालत शूद्र है।

''मन अपने आप में वैश्य है। खाने-पीने तक ही वह राजी नहीं होता, कुछ और माँगता है। मन का अर्थ है-कुछ और चाहिए। शूद्र में एक तरह की सरलता है, दो रोटी मिल जाएँ और सोने के लिए सिर पर छत, छप्पर हो। शरीर की माँग सीधी है, थोड़ी-सी। देह को असम्भव में रस नहीं, इसलिए कहता हूँ देह शूद्र है।

''और जब और-और की वासना उठती है तब इनसान वैश्य हो जाता है। वैश्य का मतलब है-मन। मन व्यापारी होता है। कारोबारी। वह फैलता जाता है, रुकना नहीं जानता।

''क्षत्रिय का मतलब है-संकल्प। एक तीखी तलब कि मैं कौन हूँ? शूद्र सिर्फ़ शरीर को जानता है, वह उतने में ही जी लेता है, वैश्य मन के साथ भागता है और क्षत्रिय जानना चाहता है-मैं कौन हूँ? इसलिए सभी तीर्थंकर, राम, कृष्ण क्षत्रिय थे। क्योंकि ब्राह्मण होने से पहले क्षत्रिय होना ज़रूरी है।

''जिसने जन्म के साथ ही स्वयं को ब्राह्मण समझ लिया वह बात से चूक गया। बात खो गयी। जैसे परशुराम ब्राह्मण नहीं थे, ब्राह्मण पैदा हुए थे लेकिन उनसे बड़ा क्षत्रिय तलाशना मुश्किल है। ज़िन्दगी भर मारने का काम करते रहे, फरसा पकड़कर घूमते रहे। उन्हें ब्राह्मण कहना ठीक नहीं होगा। इसलिए संकल्प क्षत्रिय है।

''ऐसा समझिए कि भोग यानी शूद्र, तृष्णा यानी वैश्य, संकल्प यानी क्षत्रिय और जब संकल्प पूरा हो जाए तब समर्पण की सम्भावना है।

''समर्पण यानी ब्राह्मण, ब्राह्मण यानी ब्रह्म को जान लेना।''

इतिहास की एक बहुत पहले की बात है कि उद्दालक ऋषि ने अपने बेटे श्वेतकेतु से कहा, ''बेटे, तुम सिर्फ़ जन्म से ही ब्राह्मण होकर न रह जाना। हमारे घर-घराने में कभी ऐसा नहीं हुआ। हमारे पुरखे ब्रह्म को जानकर ही ब्राह्मण होते रहे। इस परम्परा को ध्यान में रखना। ब्राह्मण पैदा होकर स्वयं को ब्राह्मण न समझ लेना। यह बहुत सस्ता ब्राह्मणपन होता है।

और उद्दालक ऋषि कहने लगे, ''देखो, संयोग की बात है, अगर तुम्हें, ब्राह्मण घर में पैदा हुए बच्चे को, उस वक़्त उठाकर शुद्र घर में रख दिया जाता तो तुम समझ लेते कि तुम शूद्र हो। अगर तुम शूद्र घर में पैदा होते और उठाकर ब्राह्मण घर में रख दिया जाता, तो तुम समझ लेते कि तुम ब्राह्मण हो। यह समझ लेना, दूसरों के कहने पर है, जैसा भी दूसरों ने सिखा दिया। इस तरह दूसरों के सिखाने पर कभी कुछ नहीं होता।''

ओशो एक बात सुनाते हैं, कि विश्वामित्र स्वयं को ब्रह्मर्षि कहलवाना चाहते थे। जन्म से क्षत्रिय थे इसलिए जब तक वशिष्ठ ऋषि न कहें, कोई नहीं कह सकता। और वह कभी विश्वामित्र को ब्रह्मर्षि नहीं कहते थे, हमेशा राजर्षि कहते थे।

एक दिन विश्वामित्र ने सोचा आज फ़ैसला हो जाना चाहिए। हाथ में तलवार पकड़ ली कि या वह मुझे ब्रह्मर्षि कहें या मैं आज उनका सिर उतार लूँगा। क्षत्रिय थे इसलिए बुद्धि वही थी-तलवार वाली।

पूरे चाँद की रात थी। वशिष्ठ ऋषि के मुरीद बैठे थे और ब्रह्म चर्चा हो रही थी। विश्वामित्र पहुँचे और बग़ीचे की झाड़ियों में छुपकर बैठ गये। सोचा कोई ठीक मौक़ा देखकर सामने जाऊँगा।

इतने में एक मुरीद ने वशिष्ठ ऋषि से पूछा-महर्षि, आप विश्वामित्र के मन की मुराद क्यों नहीं पूरी कर देते? वह बहुत दिनों से कामना कर रहे हैं कि आप उन्हें ब्रह्मर्षि कह दें। वह अकसर उदास रहते हैं।

कहते हैं, उस वक़्त वशिष्ठ बोले-विश्वामित्र बहुत ऊँचे स्तर के हैं। इस वक़्त कोई और उनका सानी नहीं। मैं इसीलिए रुका हुआ हूँ कि मुझे उम्मीद है, वह ब्रह्मर्षि हो जाएगा। अभी कह दूँगा तो उसकी अन्तरात्मा रुक जाएगी। मैं चाहता हूँ कि ऐसा क़ाबिल इनसान ब्रह्मर्षि हो जाए। अभी उसके हाथ से तलवार नहीं छूट पायी। जिस दिन छूट जाएगी वह ब्रह्मर्षि हो जाएगा।

झाड़ियों की ओट में बैठे हुए विश्वामित्र ने जब यह सुना तो आँखें भर आयीं। हाथ से तलवार छूट गयी और उसने दौड़कर वशिष्ठ के पैर पकड़ लिये।

और वशिष्ठ ने कहा-आओ ब्रह्मर्षि!

विश्वामित्र रो पड़े, कहने लगे-आप नहीं जानते कि मैं यहाँ क्या करने आया था।

वशिष्ठ बोले-इसकी फ़िक्र छोड़ दीजिए कि क्या करने आये थे। सिर्फ़ देखिए! क्या किया है ? यह ब्राह्मण होने की कला है। जब अहंकार चला गया, क्षत्रियपन भी चला गया, अब आप सचमुच ब्रह्मर्षि हैं, ऋषि पहले भी थे, लेकिन अब आप ब्रह्मर्षि हैं।''

हमारे देश में आज भी एक प्रथा है-खाण्डा पखारना।

दुनियादारी की ज़िंदगी जी लेने के बाद शूद्र से वैश्य, वैश्य से क्षत्रिय होने के बाद, जब कोई ब्राह्मण होने के लिए ब्रह्म को जानने की राह पर चलता है, तो सबसे पहले अपने शस्त्रों को गंगाजल में धोकर नमस्कार करता है और उनसे विदा लेता है।

यह अपने भीतर के शूद्र, वैश्य, क्षत्रिय मन से विदा लेने का समय होता है। वह ठीक विश्वामित्र की तरह हाथ से तलवार छोड़ देता है। यह वक़्त होता है जब जातिवाद के अहंकार से मुक्त होना होता है।

ब्राह्मण लफ़्ज़ की आब खो देने वालों का इतिहास बहुत लम्बा है, लेकिन इस लफ़्ज़ की आन रखनेवाले भी होते आये हैं। एक बाबा लोकनाथ हुए हैं-पश्चिम बंगाल के, दोबीज परगना के, चौरासी चाकला गाँव में। उन्होंने हिमालय पर्वत की गुफ़ाओं में भी साधना की, काशी में तैलंग स्वामी के पास भी रहे, फिर काबुल चले गये तो मौलाना शेख साआदी से क़ुरान की तालीम पायी। तीन बार अरब देश में गये जहाँ एक दरवेश अब्दुल गफ़ूर से उनकी मुलाक़ात होती है। उनके लफ़्ज़ हैं, ''मैंने ज़िन्दगी में दो ब्राह्मण देखे हैं, एक तैलंग स्वामी और एक अब्दूल गफ़ूर।'' ब्राह्मण वह है जो ब्रह्म को जाने। अब्दुल गफ़ूर ने ब्रह्म को जाना है, ब्राह्मण मुसलमान के अन्दर भी हो सकता है, अगर वह ब्रह्म को जाने और मुसलमान हिन्दू के अन्दर भी हो सकता है अगर वह ख़ुदा पर ईमान रखे।

यह जातिवाद सही अर्थों में बहिर्मुखी होने के बाद अन्तर्मुखी होने की यात्रा है।

हर काल में तलबग़ार पूछते आये हैं कि अन्तश्चेतना का बीज अगर सबके अन्दर होता है तो खिलता क्यों नहीं ? और ऋषि संकेत देते आये हैं कि उस बीज को अगर अपने मन का पानी मिल जाए, अपने मस्तक की धूप मिल जाए तो वह बीज अंकुरित होने लगता है। उसकी महक हवा में तरंगित होने लग जाती है।

यह प्यारे संकेत हैं लेकिन इनके अमल से गुज़रना एक लम्बी राह से गुज़रना होता है।

जल और थल के किसी जीव-जन्तु के लिए अपनी काया की सलामती इस क़द्र मुश्किल नहीं होती जिस क़द्र इनसान के लिए। चाहे इनसानी वजूद में चेतना के वह बीज होते हैं जो सिर्फ़ इनसानी नस्ल में होते हैं, और इनसानी वजूद में उनका खिलना किसी भी अनुमान की हद से आगे होता है। लेकिन यह यात्रा बहुत लम्बी होती है। थोड़े से ब्यौरे में जाएँ तो देख सकते हैं कि पहली चेतना जिस सूरत में विकसित होती है उसे हम फ़ितरी चेतना कह सकते हैं...

काया की सलामती के लिए माँ-बाप, घर-परिवार जिस तरह मददगार होते हैं, पैरों को विश्वास की ज़मीन देते हैं, हिफ़ाज़त का अहसास देते हैं, उससे कभी क़बीलियाई चेतना पैदा होती है।

जिस घर-क़बीले में जन्म होता है उस घर-क़बीले के बाप-दादा क्या-क्या झेलते आये हैं, किस तरह के न्याय और अन्याय, उनकी प्राप्ति और अप्राप्ति इनसान की संस्कारित चेतना बन जाती है।

यह ही मज़मुई चेतना फ़ितरी, नफ़सी चेतना बनती है, और फिर नफ़सी-ज़ेहनी चेतना।

ज़ेहनी चेतना विकसित हो जाए तो तलब चेतना बन जाती है, समाज और मज़हब की छोटी-छोटी इकाईयों से निकलकर कायनाती इकाई के लिए तलब-चेतना।

यह ही तलब चेतना रूहानी चेतना बनती है। जब अन्तश्चेतना के बीज को मन का पानी मिलता है, मस्तक की धूप मिलती है तो अन्तर्बीज के विकसने से एक महक हवा में तरंगित होने लगती है।

मास मिट्टी की तहों में पड़े हुए एक बीज के अन्दर कैसी हरियाली और कैसे-कैसे फूलों के रंगों का जलाल सोया हुआ है, उसे जगाने लिए जिस कायनाती शक्ति की ज़रूरत होती है उसी को मैंने सूरज की सातवीं किरण कहा है।

सातवीं किरण को हमारे प्राचीन चिन्तन ने रूहानियत की किरण लिखा है और यह लम्बी यात्रा अन्तर्मन के बीज का और सूरज की सातवीं किरण का मिलन है।

यह वह अवस्था है जिस अवस्था में नन्दलाल गोआ ने कहा था, ''मैं भर बहते सागर से एक लहर की तरह उठा हूँ, अपने सागर को सजदा करने के लिए।''

इसी अवस्था में बुद्ध का मौन, मीरा का नृत्य, और नानक की वाणी कुछ समझे जा सकते हैं।

हर काल का एक प्रश्न है, जो आज भी हवा में खड़ा है कि जो समाज और जो मज़हब इनसान को छत्रछाया देता है, वह इनसान के पैरों को ज़मीन देता है, लेकिन उसकी नज़र को आसमान क्यों नहीं देता?

पहली बात यह कि पहचान बाहर से मिलेगी, किसी से मिलेगी, वह पहचान एक मसनुई सत्ता बनती जाएगी। यह मसनुई सत्ता अहंकार में उतरेगी, इसे हम भँवरमय चेतना कह सकते हैं

पानी में पड़ते भँवर, पानी से ही शक्ति लेते हैं, एक दायरे में घूमते हुए वह बहती नदी से कहीं ज़्यादा शक्तिवान हो जाते हैं। और इस सत्ता को हासिल करके वह नदी की तरह सहज बहते जाना भूल जाते हैं। इस भँवरमय चेतना के पास डुबा देने के सिवाय कोई दूसरा रास्ता नहीं होता। इस सत्ता की भँवरमय चेतना फ़ितरी चेतना को फ़ितरी गुलामी बना देती है। ज़ेहनी चेतना को ज़ेहनी गुलामी बना देती है, और मज़मुई चेतना मज़मुई गुलामी बन जाती है।

और दूसरा पहलू शाह हुसैन के लफ़्ज़ों में देखना होगा :

नदी से पार साजन का ठिकाना है
कौल किये थे ज़रूर जाना है
और मेरी अनबन हो गयी
माँझियों के साथ...

यह लफ़्ज़ अनबन एक बहुत बड़े दुःखान्त की ओर किया हुआ संकेत है।

जहाँ बाहर की हर स्थापना एक क़िलाबन्दी हो जाती है। एक नाकाबन्दी। हर स्थापना इनसान को अपनी सोच की सीमा में रखकर अपनी सत्ता हासिल करती है। और इसी सत्ता से अनबन, माँझियों के साथ हो गयी अनबन है...

यह अनबन लफ़्ज़ अन्तःक्रान्ति का संकेत है, जिसमें सीमा

से असीम की यात्रा करनी है। उसने अपनी चेतना की नदी पार करके महाचेतना से मिलना है। कायनाती इकाई साजन का ठिकाना है और 'कौल किये थे ज़रूर जाना है' यह बहुत गहरा संकेत है, उस आदि शक्ति की ओर जिससे एक तन लेकर एक वजूद मिला और यह कण का इक़रार कण चेतना है, आदि शक्ति से मिलने के लिए।

आकाश, अग्नि, पवन, पानी और धरती तत्त्व जब मिलकर रचनामय होते हैं तो कुल बनती हैं और कुल में विचरण करती चेतना शक्ति कुलनायिका कहलाती है।

यह कुल नायिका हर काया में होती है पर बीज रूप में सोयी हुई। इस सोयी हुई को इनसान अपनी इच्छा-शक्ति, ज्ञान-शक्ति और क्रिया-शक्ति से जगा सकता है।

इन तीन शक्तियों के मिलने से 'त्रिंशिका' लफ़्ज़ बना जिसका संकेत देने लिए श्री परा परा त्रिंशिका जैसे ग्रन्थ वजूद में आये। यह ग्रन्थ मूल ग्रन्थ रुद्रयामल का अंग हैं रुद्रयामल का अर्थ है - रुद्र (शिव) और रुद्रा (शक्ति) का एक रूप होना। इसी एक रूप मूल बिन्दु से तरंगित हुई शक्ति चेतना-शक्ति है। जो आकाश, अग्नि, पवन, पानी और धरती तत्त्व के मिलन से बनी कुल में विचरण कर रही कुलनायिका है।

यही शाह हुसैन के लफ़्ज़ों में कण का किया हुआ कौल है। मूल शक्ति को मिलने के लिए।

यह धारा से राधा हो जाने की यात्रा है...

ओशो सुनाते हैं कि प्राचीन शास्त्रों में राधा का कोई ज़िक्र नहीं था, गोपियाँ थीं, सखियाँ थीं, कृष्ण बाँसुरी बजाते थे, रासलीला होती थी, लेकिन प्राचीन शास्त्रों में राधा का नाम कहीं नहीं है। सिर्फ़ इतना ज़िक्र था कि सखियों में एक थी जो छाया की तरह कृष्ण के साथ रहती थी। सात सौ साल पहले राधा का नाम इतिहास में आया। गीत गाये जाने लगे, राधा के प्रेम के और कृष्ण के साथ राधा का नाम जुड़ गया।

और ओशो कहते हैं कि इस नाम की खोज के पीछे बहुत बड़ा गणित है। राधा लफ़्ज़ बनता है... धारा लफ़्ज़ को उल्टा करके... गंगोत्री से गंगा की धारा निकलती है, स्रोत से दूर जानेवाली अवस्था का नाम धारा है और धारा लफ़्ज़ को उलटा देने से राधा हुआ जिसका अर्थ हुआ स्रोत की तरफ़ लौट आना।

''गंगा लौट रही है गंगोत्री की ओर। बहिर्मुखी अवस्था अन्तर्मुखी हो रही है।''

दूसरे लफ़्ज़ों में यह धारा का इक़रार है, कौल है, गंगोत्री से फिर से राधा बनने का। और यही शाह हुसैन का कौल है नदी से पार जाकर साजन को मिलने का।

सीमा से असीम की ओर जाती राह के लिए सूफ़ियों ने जो सात संकेत दिये हैं उन्हें इस यात्रा के सात मुक़ाम कह सकते हैं। रहस्यवालों के यह संकेत उनके कलाम की रोशनी में देखें तो कुछ गाढ़े हो जाते हैं, जैसे :

पहला संकेत 'तलब' की कैफ़ीयत का है, जिसका कुछ अतापता इन हर्फ़ों से मिलता है :

ये तन रब सच्चे का हुज़रा
फ़क़ीरा इसमें झाँक कर देख
शौक का दीया अँधेरे में जला
शायद खोयी हुई वस्तु मिल जाए...

इसी तलब से आग का शोला नुमायाँ हुआ तो इश्क़ का मुक़ाम आया जिसकी दीवानगी कुछ इन लफ़्ज़ों में मिलती है :

ईमान सलामत सब कोई कहता
इश्क़ सलामत कोई हू
जिस मंज़िल को इश्क़ ले जाए
इमाने ख़बर न होई हू...

'इश्क़' जिस मुक़ाम पर ले जाता है उसका संकेत मार्फ़त का मुक़ाम है :

योग की एक राह भी तू
इश्क़ की दरग़ाह भी तू
आशिक़ की एक सदा भी तू
अल्लाह की एक रज़ा भी तू

'मार्फ़त' की वजद में जब अंग-अंग बौरा गया तो 'बेनियाबी' का मुक़ाम आया :

मुख यार का समझ कुरान लिया
जब यार को क़ाबा जान लिया
रब बख़्शे न बख़्शे उसकी रज़ा
हम यार को सजदा कर बैठे

'बेनियाज़ी' की अवस्था ने जब कुल आलम की यकताई देख ली तो 'तौहीद' का मुक़ाम आया :

मैं अपने हुज़रे की मिट्टी हूँ
एक लक़ीर ख़ुदा के शज़रे की हूँ

आगे संकेत 'हैरत का है, नूरे हैरत का, दीदारे ख़ुदा का-

आशिक़ इश्क़ की नमाज़ पढ़ते हैं
जिसमें कोई हर्फ़ नहीं होता...
न ज़बान हिलती है, न होठ फड़कते हैं
पाक नमाज़ी वही होता है...

इसी अवस्था पर आकर ऊँ की कायनाती ध्वनि अन्दर से सुनाई देती है। ओंकार का नाद कण-कण से उठता लगता है। और आख़िरी मुक़ाम 'फक्रफ़ना' का है, वस्ल का वह मुक़ाम जहाँ देखनेवाला दिखाई देनेवाले में लीन हो जाता है। अगर कोई इस धड़कती ख़ामोशी को सुन ले तो उसकी कैफ़ीयत हो जाती है :

फ़क़ीरा आपे अल्लाह हो

कायनात की शक्तियों के कुछ रहस्य जिन ऋषियों ने जाने और उनका कुछ अतापता दुनिया को देना चाहा तो वह रहस्य कुछ गाथाओं में लपेट दिये, ताकि वे कहानियाँ समय की धूल से गुज़रकर भी कुछ बच जाएँ।

इसलिए सब प्राचीन कहानियाँ प्रतीकात्मक हैं। आम लोगों में सामर्थ्य नहीं होती किसी सूक्ष्मता में उतरने की इसलिए सभी रहस्य कहानियाँ बनाकर वक़्त के हवाले कर दिये गये कि जो पात्र होंगे वह इन कहानियों का सार समझ लेंगे।

प्राचीन चिन्तन को समझने के लिए प्रतीक विज्ञान को देखना होगा। मिसाल के तौर पर सिर्फ़ एक कहानी का हवाला देती हूँ -

अहल्या, गौतम और इन्द्र की कहानी का, जो समय की धूल से गुज़रती रही और आज भी जिसकी सूरत पहचानी नहीं जाती।

ब्रह्मवैवर्त पुराण में एक कहानी है कि एक दिन ब्रह्मा जी ने कहा - मैंने अनेक रूपवतियाँ और गुणवतियाँ बनायीं लेकिन एक अत्यन्त सुन्दरी है जिसकी परवरिश के लिए न दैत्यों में कोई शक्ति है, न देवताओं में, न मुनियों में, इसलिए परम तपस्वी और बुद्धिमान गौतम को मैं वह पालने के लिए देता हूँ।

वही सुन्दरी जब जवान हुई गौतम उसे ब्रह्मा जी के पास ले आये तो उसे देखकर अग्नि, इन्द्र, वरुण जैसे देवता उसकी इच्छा करने लगे। उस वक़्त ब्रह्मा जी ने कहा - इस सुन्दरी को देखकर सबके मनों में हलचल होने लगी इसलिए मैं इसका नाम अहल्या रखूँगा, और जो भी ऋषि या देवता पृथ्वी की प्रदक्षिणा करके सबसे पहले आएगा मैं उसे दे दूँगा।

कहानी इस तरह चलती है कि जब सभी देव-दानव पृथ्वी की प्रदक्षिणा करने के लिए चले गये तो गौतम ऋषि ने कामधेनु गाय के गिर्द एक चक्कर लगाया और ब्रह्मा जी के पास आ गये। गाय को भी पृथ्वी कहा जाता है इसलिए ब्रह्मा जी गौतम की बुद्धिमत्ता को देखकर हँस दिये और अहल्या गौतम को दे दी। साथ ही ब्रह्मगिरि भी दे दिया आश्रम बनाने के लिए। उसी पर्वत पर गौतम ने आश्रम बनाया।

एक बार इन्द्र आश्रम में आया लेकिन अहल्या आश्रम के भीतरी हिस्से में थी। इन्द्र उसे देख नहीं सकता था। इसीलिए एक बार जब गौतम तीर्थ-यात्रा पर गये तो इन्द्र आश्रम के भीतरी हिस्से में चला गया। उस समय इन्द्र ने गौतम का रूप धारण कर लिया था इसलिए अहल्या ने उसे स्वीकार कर लिया।

गौतम जब तीर्थ-यात्रा से लौटे। आश्रम के भीतरी हिस्से में गये तो इन्द्र को देखकर हैरान हुए, बोले-तू ऋषि-वेश में कौन है ? और गौतम ने इन्द्र को शाप दिया कि अब से तू हज़ार भगवाला हो जाएगा।

घबरायी हुई अहल्या ने कहा-ऋषि, मेरा कोई अपराध नहीं। मैंने तो इन्द्र में आपका ही समरूप देखा।

उस समय गौतम ने कहा-सुन्दरी, तू वक़्त पाकर एक नदी बन जाएगी और गौतमी नदी से मिलने पर अतिसुन्दर हो जाएगी।

इन्द्र के क्षमा माँगने पर गौतम ने कहा-जब तू गौतमी नदी में नहाएगा तो हज़ार आँखोंवाला हो जाएगा और तब से जो अहल्या के नाम पर तीर्थ बना है उसे अहल्या-संगम कहते हैं, और उसी तीर्थ को इन्द्र-संगम भी कहा जाता है।

यह कहानी एक जामा है जो प्रतीक विज्ञान को पहनाया गया है। इसे विज्ञान की रोशनी में देखना होगा-अहल्या का अर्थ है जो हिल न सके। यह एक रासायनिक पदार्थ था जो खोज के लिए गौतम को दिया गया और आश्रम के लिए जो पर्वत गौतम को दिया गया वह रसायन के लिए प्रयोगशाला बनाने के लिए था।

इन्द्र, सूरजमण्डल के मध्य की किरण का नाम है। वही किरण प्रयोगशाला में आयी तो रासायनिक पदार्थ चमक उठा। उसी चमकते पदार्थ में जब गौतम ने देखा तो अपनी सूरत नज़र आयी। गौतम, किरण विज्ञान के पहले ज्ञाता माने जाते हैं, ख़ास वक़्त पर ख़ास किरणों से गौतम ने रासायनिक पदार्थों की खोज की थी।

शाप का अर्थ होता है - कीलित कर देना। इन्द्र के रूप में जो किरण आयी गौतम ने उसे पदार्थ में कीलित कर दिया। पदार्थ को उसी किरण की ज़रूरत थी।

भग का अर्थ होता है - योनि। यानी वह नाड़ी जो सातों ग्रहों की किरणों को धरती पर लाती है। इसीलिए गौतम ने कहा-तुम हज़ार भगवाले हो जाओ यानी हज़ार नाड़ियोंवाले जिनमें से सब ग्रहों की किरणें गुज़र सकें।

अहल्या का नदी बनकर गौतम नदी से मिलना गौतम की रासायनिक खोज का दुनिया में विचरण करना है। नदी की तरह प्रवाहित होना है। लोगों तक पहुँचना है। यही वचन इन्द्र के लिए था कि तू गौतमी नदी में नहाएगा तो हज़ार आँखोंवाला हो जाएगा। यानी गौतम की खोज जब नदी की तरह बहने लगेगी, लोगों की हज़ारों आँखें उसे देख सकेंगी।

इसीलिए अहल्या तीर्थ को इन्द्र तीर्थ भी कहा जाता है।

गुरु गोविन्द सिंह जी की एक पंक्ति प्रतीक विज्ञान की जिस गहराई में उतरती है वह देखनेवाली है, उनकी एक पंक्ति है :

राँझा भयो सुरेश तह, भई मेनका हीर।

इस पंक्ति की गहराई को जानने के लिए पुराणों में दिये गये सूर्य विज्ञान का ब्यौरा सामने रखना होगा कि वर्ष के बारह महीनों के बारह सूरज अलग-अलग नाम धारण करते हैं। ये नाम ऋतु बदली के प्रभाव का संकेत हैं। उस प्रभाव में विचरण करने वाली शक्ति का संकेत हैं।

चैत में सूरज का नाम अंशु होता है,
जो ज्योतिर्पिण्ड की किरण का संकेत है।
वैशाख में उसका नाम धाता होता है
ऊर्जा को गति देने का संकेत।
ज्येष्ठ में उसका नाम इन्द्र होता है,
बिजलई शक्ति का संकेत।
आषाढ़ में उसका नाम अर्यमा होता है,
ऊर्जा को जलमय करने का संकेत।
सावन में सूरज का नाम विवस्वान होता है
तेजमय अणु से उपजाऊ शक्ति का संकेत।
भादों में उसका नाम भग होता है,
बीज की कामना का संकेत।
क्वार में उसका नाम पर्जन्य होता है,
बीज के अंकुरित होने का संकेत।
कार्तिक में उसका नाम तवशता होता है,
प्राण के शक्तिमान होने का संकेत।
अगहन में उसका नाम मित्र होता है,
कल्याणमय होने का संकेत।
पौष में उसका नाम विष्णु होता है,
स्थूल और सूक्ष्म को विकासमय करने का संकेत।
माघ में उसका नाम वरुण होता है,
जल तत्त्व को आत्मशक्ति देने का संकेत।

फाल्गुन में सूरज का नाम सूर्य होता है, वह ब्रह्माण्ड की कई

तरह की शक्तियों का समूह है जो सूरज के साथ-साथ आती है।

लम्बे ब्यौरे से सिर्फ़ एक मिसाल देती हूँ कि सूर्य रथ के आगे हर महीने जो अलग-अलग अप्सरा नृत्य करते कही गयी है उसके लिए अप्सरा लफ़्ज़ को देखना होगा-कि अग्नि तत्त्व में जल तत्त्व को मिलाने का और बरसाने का जो अमल है वही अप्सरा और उसका नृत्य है।

लोगों के पास बहुत पहचाने हुए नामों से बात पहुँचायी जा सकती है इसलिए गुरु गोविन्द सिंह जी ने बहुत पहचाने हुए नामों को लोगों के लिए इस्तेमाल किया। एक तरफ़ हीर और राँझा के नाम को जो प्रेम-कहानियों में सबसे ज़्यादा लोगों के पहचाने हुए नाम हैं और दूसरी तरफ़ सुरेश (राजा इन्द्र) और अप्सरा मेनका का नाम इस्तेमाल किया है, जो लोगों के पहचाने हुए नाम हैं।

ज्येष्ठ के महीने में सूरज का नाम इन्द्र होता है और नृत्य करती अप्सरा का नाम मेनका होता है। उनके लफ़्ज़ों में मेनका का हीर की सूरत में जन्म लेना और इन्द्र का राँझे की सूरत में, और उनकी मुहब्बत, अपने मूल को पहचानने के अर्थों में है। मेनका किरण है सूरज की और इन्द्र सूरज का नाम है। एक किरण में अपने मूल को पहचानना यह हीर की मुहब्बत है राँझा के लिए। यह अपने मूल को पहचानना अपने धर्म को पहचानना है, और कह सकती हूँ कि धर्म लफ़्ज़ की व्याख्या इससे सहज और प्यारे हर्फ़ों में नहीं हो सकती।

गुरु गोविन्द सिंह जी सूर्य विज्ञान के ज्ञाता थे। उन्होंने धर्म के सही अर्थ को बड़े विज्ञानमय ढंग से, जिस तरह एक प्रचलित प्रेम-कहानी के नामों में लपेट दिया है यह प्रतीक विज्ञान की एक बहुत प्यारी मिसाल है।

थोड़ी-सी बात तत्त्व विज्ञान की करूँगी।

जिस तरह ब्रह्मा, विष्णु और महेश सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण के प्रतीक हैं उसी तरह तत्त्व विज्ञान का दूसरा नाम देवतावाद है।

तत्त्व को देवता कहते हैं।

हमारे प्राचीन चिन्तन ने ब्रह्माण्ड की तत्त्व शक्तियों को गहराई से जाना और विज्ञान की रोशनी में रखकर कर्म में उतारा।

इसी कर्म में उतारने का नाम कर्मकाण्ड है, जिसके अर्थ वक़्त पाकर खो गये।

यह विज्ञान इनसान को भयमुक्त करने के लिए था, भयग्रस्त करने के लिए नहीं।

मिसाल के तौर पर-जब सूर्य-ग्रहण में अग्नि तत्त्व की प्रधानता देख ली तो उस तत्त्व के गुणधर्म को देवता कहा गया-रुद्र-शिव।

और इस पहचान में से निकला हुआ जो स्वीकार है वही तत्त्व का स्वागत है, और उसी स्वागत का नाम पूजा है।

इसीलिए सूरज की पूजा जवाकुसुम के फूलों से होती है, इसलिए कि इन फूलों में वही तत्त्व प्रधान होता है, जो सूरज में होता है।

सिर्फ़ एक मिसाल और देती हूँ।

बृहस्पति ग्रह में आकाश तत्त्व की प्रधानता होती है, इसीलिए इस तत्त्व के देवता ब्रह्मा और शिव हैं।

आकाश तत्त्व की अधिकता के कारण बृहस्पति का रंग पीला होता है और इसी पहचान से उसकी पूजा, अर्चना के लिए पीला कनेर लिया जाता है।

पीले कनेर की सुगन्धि इनसान की विवेक-शक्ति को बढ़ाती है।

चेतना की सात पर्तों को सप्तर्षि कहा जाता है यानी सप्तर्षि चेतना की सात पर्तों के प्रतीक हैं।

कायनात के शक्तिकण चेतना में कैसे विचरण करते हैं और कौन-सी शक्ति कौन-से शक्तिकण में कौन-सा तत्त्व प्रधान होता है उसी के मुताबिक प्रतीकवाद को देखना होगा।

वशिष्ठ ऋषि - अग्नि तत्त्व के प्रतीक हैं।
कश्यप ऋषि - पृथ्वी तत्त्व के प्रतीक हैं।
अत्रि ऋषि - जल तत्त्व के प्रतीक हैं।
जमदग्नि ऋषि - तेज तत्त्व के प्रतीक हैं।
गौतम ऋषि - वायु तत्त्व के प्रतीक हैं।
विश्वामित्र ऋषि - आकाश तत्त्व के प्रतीक हैं।
भरद्वाज ऋषि - चेतन तत्त्व के प्रतीक हैं।

ये ऋषि चेतना की सात पर्तें हैं और इसमें विचरण करते हुए तत्त्व अलग-अलग प्रभाव देते हैं।

अग्नि तत्त्व - विवेक शक्ति देता है।
पृथ्वी तत्त्व - जागरण शक्ति देता है।
जल तत्त्व - वाणी शक्ति देता है।
तेज तत्त्व - कर्म शक्ति देता है।
वायु तत्त्व - विचार शक्ति देता है।
आकाश तत्त्व - इच्छा शक्ति देता है।
चेतन तत्त्व - संकल्प शक्ति देता है।

कायनाती चेतना के ये कण जब आकारमय होते हैं, उनका दर्शन अनेक पहलू चेतना बनता है।

शक्तिकणों का काया में तरंगित हो जाना - शिव चेतना हो जाता है।

काया में शक्तिकणों का करुणामय हो जाना - बुद्ध चेतना हो जाता है।

कर्म के फल की इच्छा से मुक्त हो जाना - कृष्ण चेतना हो जाता है।

कुल आलम की यकताई देखने का वजूद - सूफ़ी चेतना हो जाता है।

'राम रस रंग भीनी चदरिया' की ख़ुमारी - कबीर चेतना हो जाता है।

काया के शक्तिकणों का नादमय हो जाना - मीरा चेतना हो जाता है।

और कायनात की सूक्ष्म तरंगों का वाणी में उतर आना - नानक चेतना हो जाता है।

शक्तिकणों की लीला अनन्त है, अपार है, और इनमें विचरण करती सूरज की सातवीं किरण को मैं नमस्कार करती हूँ।

('नागमणि' -से) साभार : अक्षरों की रासलीला

एक इन्कलाबी की विरासत

चे कौन था?

अक्तूबर 12, 2007

चालीस साल पहले, अमेरिकी गुप्तचर एजेन्सी (सी आई ए) के आदमी ने अर्नेस्टो चे गेवारा की हत्या की, जब उसके गुरिल्ला योद्धा संघर्ष में हार गए थे। उसके बाद से चे की छवि ने लाखों लोगों को प्रेरित किया है। लेकिन बहुत कम लोग, खासकर अमेरिकी नागरिक, चे की जिन्दगी या उसकी राजनीति के बारे में जानते हैं।

रूसी समाजवादी लेनिन ने कभी कहा था कि जब इन्कलाबी नेता की मौत होती है, तो थैलीशाहों और सत्ताधारियों द्वारा, एक तरह से उन लोगों के लिए छूट के तौर पर जिनका वे उत्पीड़न करते हैं, उसकी छवि को मिटा कर उसका स्मारक बनाया जाता है। इस तरह मार्टिन ल्यूथर किंग के नाम पर राष्ट्रीय अवकाश होता है और माल्कम एक्स के नाम से डाक टिकट जारी किया गया है। प्रस्तुत लेख में टोड चेरेटिन चे की चर्चित छवि से परे जाकर चे की वास्तविक जिन्दगी, उसके विचार और उसके कार्य पर निगाह डाल रहे हैं।

चे गेवारा का जन्म अर्जेन्टीना में 1928 में एक ऐसे भूस्वामी परिवार में हुआ था, जिसकी स्थिति बदतर हो रही थी, अलबत्ता वामपंथी राजनीति से जिसका गहरा ताल्लुक था। परिवार ने उसे न्याय के बोध से लैस किया, उसे डाक्टरी की पढ़ाई के लिए जाने का मौका दिया और दुर्भाग्यपूर्ण तरीके से जिन्दगी भर के लिए अशक्त बना देने वाला अस्थमा दिया।

विभिन्न देशों के मेडिकल क्लिनिकों में गरीबों के लिए काम करने के दौरान, चे के मन में अमेरिकी साम्राज्यवाद और लातिन अमेरिका के सम्पत्तिशाली तबकों के प्रति गहरी घृणा विकसित हुई।

1954 में वह उस वक्त ग्वाटेमाला पहुंचे जब जेकोबो अर्बेन्झ की सुधारवादी सरकार सी आई ए द्वारा प्रायोजित तख्तापलट का शिकार हुई थी। यह तख्तापलट और उसके खिलाफ लोगों की लामबन्दी करने में अर्बेन्झ की नाकामयाबी ने इस युवा डॉक्टर को गहराई से प्रभावित किया।

आगे मेक्सिको पहुंचने के बाद, चे का सम्पर्क फिदेल कास्त्रो के इर्दगिर्द बने क्यूबाई प्रवासियों के एक छोटे समूह से हुआ। अपनी जिन्दगी में पहली बार, कई सालों की यायावरी के बाद, वह क्रान्तिकारियों के एक वास्तविक संगठन का हिस्सा बने जो अपने विचारों पर अमल करने के लिए योजना विकसित करने में लगे थे। कुछ महीनों बाद, अर्जेन्टीना की सेना ने राष्ट्रपति जुआ पेरॉन को बेदखल कर दिया, जिससे चे बहुत क्षुब्ध हुए तथा इस बदलते घटनाक्रम ने चे के परिवार को भी संकट में डाला। चे ने तय किया कि कार्रवाई का वक्त़ आ गया है।

कास्त्रो का जन्म एक सम्पन्न परिवार में हुआ था और वे अगर चाहते तो वकील बन सकते थे। उसके बजाय, उन्होंने अमेरिका समर्थित क्यूबाई तानाशाह फुलगेन्सिओ बातिस्ता की हुकूमत के विरोधियों का साथ दिया और वर्ष 1953 में मोन्काडा बैरेक्स पर एक असफल फौजी हमला किया।

कास्त्रो को कारावास की सज़ा हुइ और उन्हें देश निकाला दिया गया, अलबत्ता वह इस हमले के चलते मशहूर भी हुए। तीन साल बाद, साथ में एक डॉक्टर के तौर पर चे को लेकर, कास्त्रो 81 लोगों के साथ ग्रानमा पर सवार थे ताकि बातिस्ता के खिलाफ गुरिल्ला युद्ध की शुरुआत की जा सके। कुछ ही दिनों के अन्दर, 17 लोगों को छोड़ कर बाकी सभी योद्धा या तो कार्रवाई में मार दिए गए थे, पकड़ लिए गए थे और फांसी पर चढ़ा दिए गए थे।

हालांकि, कास्त्रो, चे और बाकी लड़ाके दूरदराज की पहाड़ियों में टिके रहने में कामयाब हुए और आने वाले दो सालों में, उन्होंने प्रभावी गुरिल्ला सेना का गठन किया, अपने नेतृत्व में बाकी विद्रोहियों को एकत्रित किया और इन्कलाबियों के एक मजबूत शहरी नेटवर्क के साथ अपनी गतिविधियों का समन्वय किया।

1 जनवरी 1959 को बातिस्ता क्यूबा से खदेड़ दिया गया और विद्रोहियों ने हवाना में प्रवेश किया जहां उनका स्वागत लाखों समर्थकों ने किया। इस तरह, महज तीन सालों के अन्दर, चे एक राजनीतिक मुसाफिर से क्यूबाई इन्कलाब की अहम व्यक्तित्व में रूपान्तरित हुए थे।

अगले तीन सालों में, चे ने एक प्रचण्ड जमीन सुधार कार्यक्रम में, निरक्षरता के उन्मूलन में, सभी अमेरिकी सम्पत्ति के राष्ट्रीयकरण और अमेरिका समर्थित बे ऑफ पिग्स आक्रमण को शिकस्त देने में अग्रणी भूमिका निभायी। क्यूबा की कामयाबी को अन्य देशों में दोहराने की चे की इच्छा पहले उन्हें 1965 में कांगो ले आयी और फिर बोलीविया ले गयी , जहां गुरिल्ला संघर्ष शुरू करने की उनकी कोशिश असफल हुई।

चे की असामान्य जिन्दगी दरअसल इस बात को उजागर करती है कि आज भी वे लोगों के आदर्श क्यों हैं ? हालांकि, उनकी शोहरत का असली कारण यह है कि उसी किस्म की सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियां जिन्होंने उन्हें क्रान्तिकारी निष्कर्षों तक पहुंचाया आज भी विद्यमान हैं या उससे अधिक बदतर हुई हैं। इस तरह आज हम चे से क्या सीख सकते हैं ?

चे ने महसूस किया कि अमेरिकी साम्राज्यवाद - चिले के अनाकोन्डा कॉपर/ताम्बा से ग्वातेमाला के युनाइटेड फ्रूट तक - लातिन अमेरिका की अर्थव्यवस्थाओं पर हावी है।

जब-जब स्थानीय मजदूर वर्ग ने इन आर्थिक हितों पर चोट करने की कोशिश की, तब-तब अमेरिकी सेना ''अमेरिकी हितों की रक्षा'' के लिए आगे आती। बीसवीं सदी में ही अमेरिका ने निकारागुआ, मेक्सिको, क्यूबा, डोमिनिकन रिपब्लिक, हैती, पनामा और ग्रेनाडा पर आक्रमण किया और ग्वाटेमाला, एल साल्वाडोर, कोलम्बिया, होन्डुरास, चिले और अन्य स्थानों पर स्थानीय बर्बर सैनिक हुकूमतों का समर्थन किया।

यह कोई अतीत की बात नहीं है, अभी पांच साल पहले, अमेरिका ने जनतांत्रिक ढंग से चुनी गयी वेनेजुएला की ह्यूगो चावेज के खिलाफ असफल तख्तापलट की अगुआई की और वर्ष 2004 में उसने राष्ट्रपति जीन बर्ट्रान्ड एरिस्टीड की सरकार अमेरिका समर्थित ठगों ने बेदखल कर दी।

सामाजिक सुधार महत्वपूर्ण होते हैं, लेकिन चे ने समझा कि एक खास मुकाम पर, वे काफी नहीं होते। ग्वाटेमाला में 1954 में, जनतांत्रिक ढंग से चुनी गयी जेकोबो अर्बेन्झ की सरकार ने युनाइटेड फ्रूट के नियंत्रणवाली अनुपयोगी पड़ी लाखों एकड़ जमीन के पुनर्वितरण का काम शुरू किया।

इसके बाद अमेरिकी राष्ट्रपति आयसेनहावर ने सी आई ए को निर्देश दिया कि वह उसे सत्ता से हटा दे। लेकिन तख्तापलट की ताकतें खुद बेहद कमजोर थीं और उनका ज्यादा जोर प्रचार और धमकियों पर ही था। उनकी कामयाबी का राज इस बात में था कि ग्वाटेमाला के मजदूरों और गरीबों को हथियार बांटने में अर्बेन्झ हिचकिचा रहे थे, उन्हें इस बात का डर था कि क्रान्ति फूट पड़ेगी और ''अधिक आगे'' निकल जाएगी।

अर्बेन्झ सुधार चाहते थे, लेकिन उन्हें इन्कलाब का डर था। अन्त में, उनके हाथ कुछ नहीं आया। इसके बजाय, दक्षिणपंथी फौजी हुकूमत ने तख्तापलट के बाद के दशकों में लगभग पांच लाख से अधिक गरीब और मूलनिवासी लोगों का कतलेआम किया।

चे स्वाध्याय के माध्यम से मार्क्सवादी बने थे और चाहते थे कि समाजवाद पूंजीवाद को प्रतिस्थापित करे। उन तमाम लोगों की तरह जो उनके दौर में अपने आप को समाजवादी कहलाते थे, उन्होंने भी 1917 की रूसी क्रान्ति का समर्थन किया और सोचा कि 20 के दशक में स्तालिन के सत्ता सम्भालने के बाद सोवियत संघ में जो समस्यायें खड़ी हुई हैं, वे मामूली किस्म की हैं।

हालांकि क्यूबाई इन्कलाब के बाद चे ने सोवियत संघ के प्रयोग को बेहद सहानुभूतिपूर्ण तरीके से समझने की कोशिश की, लेकिन नौकरशाहाना शासकवर्ग के प्रति उनका रुख अधिकाधिक प्रतिकूल होता गया। रूसी शासक क्यूबा को थोड़ी सहायता देना चाह रहे थे ताकि अमेरिका को दुविधा की स्थिति में डाला जा सके, जबकि आर्थिक तौर पर देखें तो वे क्यूबा को चीनी बागानों के प्रचण्ड मेहनत के कामों में उलझाये रखना चाहते थे।

धीरे-धीरे चे ने अमेरिका की तरह सोवियत संघ को अविकसित दुनिया के ''साम्राज्यवादी शोषण'' में सहभागी के तौर पर देखना शुरू किया।

स्तालिनवादी शासकवर्ग द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय इन्कलाब के प्रति दिखाये विरोध के कारण सोवियत संघ के प्रति चे की निराशा अधिक बढ़ी। समूचे लातिन अमेरिका में, रूसपरस्त कम्युनिस्ट पार्टियां स्थानीय शासक वर्ग के खिलाफ मजदूर वर्ग

की क्रान्तियों की अगुआई करने के बजाय मास्को की विदेश नीति के हितों का ''शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व'' (पढ़ें आकर्षक व्यावसायिक करार) कायम करने में मुब्तिला थीं।

जैसे-जैसे 1960 के दशक के पूर्वार्द्ध में क्यूबा की क्रान्तिकारी प्रक्रिया में बाधाएं खड़ी होने लगीं, चे इस बात के प्रति अधिकाधिक कायल होते गये कि क्यूबा का भविष्य समूची दुनिया में, खासकर लातिन अमेरिका में इन्कलाबों की कामयाबी से जुड़ा है। 1964 तक आते-आते चे ने क्यूबा की सरकार के संचालन में अगुआ की अपनी भूमिका को लगभग स्थगित कर दिया था और क्रान्ति को फैलाने की अपनी योजना पर अमल करने में जुटे थे।

हालांकि उनका रणकौशल (TACTICS) विनाशकारी था, चे की यह समझदारी कि लातिन अमेरिका की अवाम से अन्तर्राष्ट्रीय एकजुटता हासिल करे बिना क्यूबा की क्रान्ति को दमित किया जा सकेगा, निश्चित ही दुरुस्त थी। 1968 तक आते-आते कास्त्रो ने अन्तर्राष्ट्रीय इन्कलाब के प्रति अपने तमाम दावों को लगभग छोड़ दिया था और रूसी शासक वर्ग के साथ अपनी हुकूमत को अधिकाधिक जोड़ लिया था। मिसाल के तौर पर, जब रूसी टैंकों ने 1968 में चेकोस्लोवाकिया के जनविद्रोह को कुचल डाला तब कास्त्रो ने इन हत्यारों का समर्थन किया और विद्रोहियों को 'फासिस्ट' कहा।

1991 में पुराने सोवियत संघ के पतन के बाद कास्त्रो ने समूची दुनिया में - मेक्सिको से स्पेन से जर्मनी तक - पूंजीवादी हुकूमतों के साथ गठजोड़ बनाये। हाल के समयों में, कास्त्रो ने वेनेजुएला की वामपंथी सरकार के साथ संबंध विकसित किए हैं, लेकिन यह उसकी शासन का अपवाद ही कहा जा सकता है।

चे ने अपने इर्दगिर्द अन्याय को देखा, जिस तरह आज हम देखते हैं। उन्होंने एक बार कहा था ''अगर आप इन्कलाबी हैं, तो इन्कलाब कीजिए।'' लेकिन चे की राजनीतिक विरासत की समझदारी का आकलन करने का सबसे कठिन हिस्सा है, इस बात को समझना कि इससे उनका क्या मतलब था।

महान मेक्सिकन उपन्यासकार कार्लोस फुन्टेस ने चे के क्रान्तिकारी सिद्धान्त की संचालक शक्ति के तौर पर ''संकल्पवाद/वालेन्टेरिजम'' का उल्लेख किया था, अर्थात यह विश्वास कि कुछ व्यक्तियों की ताकत राजनीतिक परिस्थितियों को व्यापक पैमाने पर बदल सकती है। किसी भी ईमानदार आलोचक के लिए इस बात से असहमत होना मुश्किल होगा, और यही वह मुक़ाम है कि मार्क्सवाद के प्रति चे की विचारधारात्मक प्रतिबद्धता और उनकी व्यावहारिक कार्रवाइयां एवं विचार आपस में टकराते थे।

मिसाल के तौर पर, मार्क्स के इस कथन का, कि व्यापक मजदूर वर्ग को अपनी क्रान्ति को खुद अंजाम देना होगा ताकि वह सही समाजवादी बने, चे पर व्यापक प्रभाव पड़ा। हालांकि जब वह (1950 के दशक में) राजनीतिक तौर पर सचेत हुए, उन्होंने पाया कि लातिन अमेरिका के मजदूर वर्ग ने पराभवों को झेला है और उसके शोषण के बावजूद वह पस्ती की हालत में है।

इस समूची स्थिति को एक अस्थायी दौर मानने के बजाय, जो विश्वयुद्ध के बाद के उछाल और स्तालिनवादी कम्युनिस्ट पार्टी के सुधारवाद का नतीजा था, चे ने यह सिद्धान्त विकसित किया कि शहरों का मजदूर वर्ग क्रान्ति के बाद भी तटस्थ बना रहेगा और क्रान्तिकारी राज्य को उसे प्रेरित करना पड़ेगा।

शहरी मजदूर वर्ग की क्रान्तिकारी सम्भावना में चे के विश्वास की कमी, उन्हें झेलने पड़ते दमन के उसके विश्लेषण की वजह से भी, पैदा हुई थी। 'गुरिल्ला युद्ध' पर केन्द्रित अपनी चर्चित रचना में चे कहते हैं कि क्रान्ति को शहरों से गांवों की ओर ले जाने का एक बड़ा कारण यही है कि गुप्त पुलिस और सेना से सुरक्षित होकर बीहड़ में काम करना सम्भव होता है।

लेकिन अपने इस अवलोकन को चे ने मजदूर वर्ग के ज़रिये इन्कलाब करने की जिम्मेदारी को गुरिल्ला योद्धाओं के एक चुने हुए समूह के हाथ में हस्तान्तरित करने का बहाना बनाया।

और जब उन्होंने क्यूबा के इन्कलाबी गुरिल्लों के अनुभव को कांगो, अर्जेन्टीना, ब्राजील और बोलीविया में दोहराने की कोशिश की, हर बार उनका नतीजा प्रचण्ड विध्वंस के रूप में ही सामने आया।

आखिर इसकी वजह क्या थी ? चे ने क्यूबाई इन्कलाब में शामिल शहरी ताकतों को कम करके आंका (जिनमें रैडिकल और मध्यमार्गी, मजदूर वर्ग और मध्यम वर्ग सभी तरह की ताकतें शामिल थीं) दूसरे, उन्होंने किसी देश के राजनीतिक वातावरण को क्रान्तिकारी उदाहरण के ज़रिये रूपान्तरित कर पाने की गुरिल्लों की क्षमता का अत्यधिक आकलन किया।

बाद में यह साफ हुआ कि क्यूबाई इन्कलाब की सफलता के बारे में चे ने एकांगी आकलन किया - और सबसे दुःखद बात यह थी कि उन्होंने इसी समझदारी को दूसरे स्थानों पर एवं समयों में लादने की कोशिश की।

अपने क्रान्तिकारी तर्क के केन्द्र से मजदूर वर्ग को हटाने की परिणति इस नज़रिये में हुई जहां चे ने यह दृष्टिकोण अपनाया कि

क्रान्तिकारी पार्टी (या गुरिल्ला समूह) का काम है मजदूर वर्ग की ओर से इन्कलाब करना। फिर क्रान्ति सम्पन्न हो जाने के बाद, पार्टी मजदूर वर्ग के बेहतर हितों के मद्देनज़र राज्य का संचालन करेगी। समाजवाद को हासिल करने के लिए मजदूरों की सत्ता, सहभागिता और जनतंत्र की आवश्यकता नहीं है।

यह विचार कार्ल मार्क्स का यह विश्वास कि ''समाजवाद मजदूर वर्ग की आत्म-मुक्ति का साधन है'' उसके साथ बिल्कुल मेल नहीं खाता है। 1917 में सम्पन्न रूसी इन्कलाब में, लेनिन और बोल्शेविकों ने इससे विपरीत रास्ता अपनाया।

दुर्भाग्यपूर्ण ढंग से, इस समूचे घटनाक्रम के चलते क्यूबा के अन्दर, मजदूरों के जनतंत्र का रास्ता सुगम करने और वास्तविक समाजवादी इन्कलाब की ज़मीन तैयार करने के बजाय, कास्त्रो को अपनी नौकरशाहाना राज्य सत्ता को सुदृढ़ करने का मौका मिला।

चे को इस बात का दोष नहीं दिया जा सकता कि वे एक ऐसे इन्कलाब से जुड़े जिसके बारे में उनकी समझदारी पूरी नहीं थी और न ही इस बात के लिए उनकी आलोचना की जा सकती है कि उन्होंने गलतियां कीं। किसी स्वस्थ मॉडल के अभाव में, वे जैसे जैसे आगे बढ़े उस हिसाब से ही उन्हें अपना व्यवहार तय करना पड़ा।

स्तालिनवाद की विरासत का अर्थ था कि उसकी पीढ़ी आम तौर पर उस ज्ञान से वंचित रही कि इतिहास की एकमात्र मजदूर क्रान्ति के दौरान रूस की बोल्शेविक पार्टी का संचालन किस तरह हुआ।

दरअसल, जब क्यूबाई इन्कलाब के अधिकाधिक बढ़ते नौकरशाहीकरण से अपने आप को अनुकूलित करने और पूंजीवाद के खिलाफ संघर्ष का अन्तर्राष्ट्रीयकरण करने के लिए अपने आप को न्यौछावर कर देने का विकल्प चे के सामने रखा गया, तब चे ने कोई आनाकानी नहीं की।

लेकिन चे की गलतियों के बारे में हमें खामोश नहीं रहना चाहिए। एक दूसरा रास्ता लिया जा सकता था।

अपने आप को मुक्त करने की मजदूर वर्ग की क्षमता पर यकीन रखनेवाली 1960 की क्रान्तिकारी पीढ़ी के तमाम बेशकीमती लोगों को गुरिल्ला के हाथों की बन्दूक की सत्ता पर यकीन दिलाने में चे सफल हुए।

लेकिन लातिन अमेरिकी मजदूर वर्ग चे को गलत साबित करनेवाला था, जैसे-जैसे 1960 के उत्तरार्द्ध और 1970 के पूर्वार्द्ध में मजदूर वर्ग के संघर्ष खड़े हुए। चिले, अर्जेन्टीना, ब्राजील, मैक्सिको और अन्य कई देशों के लाखों मजदूर, अपने शोषकों के खिलाफ, आम हड़ताल और जनान्दोलनों में शामिल हुए।

इसके बारे में निश्चयात्मक कुछ नहीं कहा जा सकता कि अगर चे ज़िन्दा रहते तो उनकी क्या भूमिका होती ? दुर्भाग्य से, चे और उनके अनुयायी या तो पहले ही निष्फल गुरिल्ला कार्रवाइयों में मारे जा चुके थे या ऐसे विद्रोहों के लिए राजनीतिक तौर पर तैयार नहीं थे। इस तरह, यह एक अच्छा उदाहरण है जो बताता है कि ऐसे लोग जो कहते हैं कि राजनीतिक सिद्धान्त की अहमियत नहीं है किस तरह 100 फीसदी गलत होते हैं।

चे सन्त नहीं थे। वह एक इन्कलाबी थे और इसी तरह उनके साथ व्यवहार किया जाना चाहिए। इसका अर्थ यही है कि उनके प्रति यही सच्ची श्रद्धांजलि हो सकती है कि हम संघर्ष में उनका अनुसरण करें, लेकिन उनके विचारों और अनुभव से उन्हीं बातों को ग्रहण करें जो हमें उचित लगें और उन तमाम गलतियों को छोड़ दें जिन्होंने उनका साथ दिया।

सोशलिस्ट वर्कर यूनियन से साभार

साथियों,
हम उम्मीद करते हैं कि आई.एस.डी. का न्यूज़लैटर 'समरथ' आपको नियमित रूप से मिल रहा है। हम चाहते हैं कि आप 'समरथ' पर अपनी प्रतिक्रियाएं और सुझाव भेजें वो चाहे विषयों के चयन पर हो या फिर भाषा और शैली को लेकर। साथ ही ये भी बताएँ कि आप किन और विषयों को 'समरथ' में जोड़ना चाहेंगे। ये हमें 'समरथ' को और भी उपयोगी बनाने में मदद करेगा। हमें आपके ख़तों का इंतज़ार रहेगा।

सधन्यवाद

Place Stamp Here

isd इंस्टीट्यूट फॉर सोशल डेमोक्रेसी
फ्लैट नम्बर-110, नम्बरदार हाउस
62-ए, लक्ष्मी मार्केट, मुनिरका
नई दिल्ली-110067

isd इंस्टीट्यूट फॉर सोशल डेमोक्रेसी

फ्लैट नम्बर-110, नम्बरदार हाउस,
62-ए, लक्ष्मी मार्केट, मुनिरका, नई दिल्ली-110067
टेलीफोन 011-26196356, टेलीफैक्स 011-26177904, ईमेल : notowar@rediffmail.com

केवल सीमित वितरण के लिए